प्रकाशकीय निवेदन

हमारे धार्मिक साहित्यमें पुराण एवं चरित्रोंको एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। हमारे आचार्योंने केवल ऐतिहासिकताकी दृष्टिसे ही नहीं, वरन् सर्व साधारणके लिये धर्मतत्व बोध गम्य बनानेके उद्देश्यसे उपरोक्त ग्रन्थोंका निर्माण किया है। यह निसंदेह कहा जा सकता है कि, जैनधर्मके तत्वों की यथार्थ रूपसे जानकारीके लिये जितने सुगम पुराण और चारित्र हैं, उतने दार्शनिक ग्रन्थ नहीं। कारण दार्शनिक ग्रंथोंमें धार्मिक तत्वोंका विवेचन जिस ढंगसे किया गया है, वह मामूली पढ़े लिखे लोगोंको कठिन पड़ता है। उनसे सर्व साधारण जनताके लिये धर्म सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कर लेना, कठिन अवश्य है। हमारे पुराण एवं चरित्रोंकी रचनायें प्राचीन कालमें हुई थीं। उनकी तत्कालीन साहित्य प्राकृत एवं संस्कृत भाषामें होनेके कारण आजके युगमें उनका अध्ययन केवल संस्कृतज्ञों तथा विद्वानों तक ही सीमित रह जाता है—उनका सार्वभौम प्रकाश सर्व साधारण तक नहीं पहुंच पाता।

प्राचीन युगके साथ साथ प्राचीन भाषाओं (संस्कृत एवं प्राकृत) के प्रसारमें भी बहुत शिथिलता आ गयी है। अतः इस युगमें धार्मिक ग्रन्थोंके हिन्दी प्रकाशनसे ही धार्मिक-ज्ञान सर्व साधारण तक पहुंचाया जा सकता है। प्रस्तुत ग्रंथ भी उच्च कोटिके चरित्रका हिन्दी रूपान्तर है। श्रीगौतम स्वामीके

चरित्र चित्रणके साथ सर्व साधारणको धार्मिक एवं व्यव-हारिक ज्ञान प्राप्त करानेके लिये इस ग्रंथमें अनेक उपयोगी विषयोंका समावेश किया गया हैं। श्रीमान मंडलाचार्यजीने इस ग्रंथकी रचना संवत् १७२६ में संस्कृतमें की थी।

अनुवादकने पुस्तकमें सुबोधता एवं सरलता लानेके लिये काफी प्रयत्न किया है। यथासाध्य मूल ग्रन्थके भावोंकी रक्षा करते हुए ही अनुवादकने हिन्दीमें रूपान्तर किया है। यदि इस ग्रंथसे सर्व साधारण धार्मिक जैन समाजको लाभ पहुंचा तो हम अपनेको कृतकृत्य समझेंगे।

जुलाई सन् १९३९ ई० } —प्रकाशक

गौतम चरित्र

प्रथम अधिकार

अर्हन्तं नौम्यहं नित्यं मुक्तिलक्ष्मीप्रदायकम् ।
विबुधनरनागेन्द्रसेव्यमानम्पदाम्बुजम् ॥

जो अरहन्त भगवान मोक्षरूपी सम्पदा प्रदान करनेवाले हैं, जिनके पाद-पद्मोंकी सेवा नर-नागेन्द्रादि सभी किया करते हैं, उन्हें मैं सर्वदा नमस्कार करता हूं। जो सिद्ध भगवान कर्मरूपी शत्रुओंके संहारक हैं, सम्यकत्व आदि अष्टगुणोंसे सुशोभित हैं तथा जो लोक शिखरपर स्थित हो सदा मुक्त अवस्थामें रहते हैं, ऐसे सिद्ध परमेष्ठी भगवान हमारे समस्त कार्योंकी सिद्धि करें। जिनेन्द्रदेव महावीर स्वामी, महाधीर वीर और मोक्षदाता हैं एवं महावीर वर्द्धमान वीर सन्मति जिनके शुभ नाम हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूं। जो इच्छित फल प्रदान करनेवाले हैं, जो मोहरूपी महाशत्रुओंके संहारक हैं और मुक्तिरूपी सुन्दरीके पति हैं, ऐसे महावीर स्वामी हमें सद्बुद्धि प्रदान करें। भगवान जिनेन्द्रदेवसे प्रकट होनेवाली सरस्वती, जो भव्यरूपी कमलोंको विकसित करती है, वह सूर्यकी ज्योतिकी भांति जगतके अज्ञानान्धकारको दूर करे। श्री सर्वज्ञदेवके मुख-

से प्रकट हुई वह सरस्वती देवी सरल कामधेनुके समान अपने सेवकोंका हित करनेवाली होती है, अतः वह देवी हमारी इच्छा के अनुसार कार्योंको सिद्धि करे। जो भव्योत्तम मुनिराज सद्धर्मरूपी सुधासे तृप्त रहते हैं, और परोपकार जिनका जीवन व्रत है, वे मुझपर सदा प्रसन्न रहें। जो कामदेव सरीखे मतङ्ग-को परास्त करने वाले हैं, जो काम क्रोधादि अंतरङ्ग शत्रुओंके विनाशक हैं, जो संसार महासागरसे भयभीत रहते हैं, ऐसे मुनिराजके चरण कमलोंको मैं बार-बार नमस्कार करता हूं। जो भव्यजन दुष्ट-जनोंके वचनरूपी विकराल सर्पोंसे कभी विकृत नहीं होते एवं सदा दूसरेके हितमें रत रहते हैं, उन्हें भी मैं नमस्कार करता हूं। साथ ही जो दूसरोंके कार्योंमें सदा विघ्न उत्पादन करनेवाले हैं तथा जिनका हृदय कुटिल है और जो विषैले सर्पके समान निन्दनीय हैं, उन दुष्टजनोंके भयसे मैं नमस्कार करता हूं। अपने पूर्व महाऋषियोंसे श्रवण कर और भव्यजनोंसे पूछकर मैं श्री गौतम स्वामीका पवित्र चरित्र लिखनेके लिये प्रस्तुत होता हूं, जो अत्यन्त सुख प्रदान करने-वाला है। किन्तु मैं न्याय, सिद्धान्त, काव्य, छन्द, अलङ्कार, उपमा, व्याकरण, पुराण आदि शास्त्रोंसे सर्वथा अनभिज्ञ हूं। मैं जिस शास्त्रकी रचना कर रहा हूं, वह सन्धि-वर्ण शब्दादिसे रहित है अतएव विद्वान पुरुष मेरा अपराध क्षमा करते रहें। जिस प्रकार यद्यपि कमलका उत्पादक जल होता है, पर उसकी सुगन्धिको वायु ही चारों ओर फैलाती है, उसी प्रकार यद्यपि काव्यके प्रणेता कवि होते हैं,पर उसे विस्तृत करनेवाले भव्यजन

हीं हुआ करते हैं। यह परम्परा है। जिस प्रकार वसन्त कोयल को बोलनेके लिये बाध्य करता है,उसी प्रकार श्री गौतमस्वामी की भक्ति ही मुझे उनके पवित्र जीवन चरित्रको लिखनेके लिये उत्साह प्रदान करती है। मैं यह समझता हूं कि, जैसे किसी ऊंचे पर्वतपर आरोहणकी इच्छा करनेवाले लंगड़ेकी सब लोग हंसी उड़ाते हैं; वैसे ही कवियोंकी दृष्टिमें मैं भी हंसीका पात्र बनूंगा; क्योंकि मेरी बुद्धि स्वल्प है।

कथा आरम्भ

मध्यलोकके बीच एक लाख योजन विस्तृत जम्बूद्वीप विद्यमान है। वह जम्बू-वृक्षसे सुशोभित और लवण सागरसे घिरा हुआ है। उस द्वीपके मध्यमें सुमेरु नामका अत्यंत रमणीय पर्वत है, जहां देवता लोग निवास करते हैं, उसी द्वीपमें स्वर्ण-रौप्यकी छ पवत मालाएं हैं। इस मेरु पर्वतके पूर्व-पश्चिम की ओर बत्तीस विदेह क्षेत्र हैं, जहाँसे भव्यजीव मोक्ष प्राप्त किया करते हैं। पवतके उत्तर-दक्षिणकी ओर भोगभूमियां हैं, जहांके लोग मृत्यु प्राप्तकर स्वर्गमें उत्पन्न होते हैं। उन भोगभूमियोंके उत्तर-दक्षिण भागमें भारत और ऐरावत नामके दो क्षेत्र हैं, जिनके बीचमें रूपाभ विजयार्द्ध पर्वत खड़ा है एवं उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणीके छः काल जिनमें चक्कर लगाया करते हैं। उन क्षेत्रोंमें भरत क्षेत्रकी चौड़ाई पांच सौ छब्बीस

योजन छः कला है। विजयार्द्ध पर्वत और गंगा, सिन्धु नामके महानदियोंके छः भाग हो गये हैं, जिन्हें छः देश कहते हैं। उन्हीं देशोंमें मगध नामका एक महादेश है। वह समस्त भू-मण्डलपर तिलकके समान सुशोभित है। वहां अनेक उत्सव सम्पन्न होते रहते हैं। वह धर्मात्मा सज्जनोंका निवास स्थान है। इसके अतिरिक्त मटम्ब, कर्वट, गांव, खेट, पत्तन, नगर, वाहन, द्रोण आदि सभी वातोंसे मगध सुशोभित है। वहां के वृक्ष ऊंचे, घनी छाया तथा फलसे युक्त होते हैं। उन्हें देख कर कल्पवृक्षका भान होता है। वहांके खेत धान्यादि उत्पन्न कर समग्र प्राणियोंकी रक्षा करते हैं। मनुष्यों को जीवन प्रदान करनेवाली औषधियां भी प्रचुर मात्रामें उत्पन्न होती हैं। वहां के सरोवरोंका तो कहना ही क्या, वे कवियोंकी मनोहर वाणी की भांति सुशोभित हो रहे हैं। कवियोंके वचन निर्मल और गम्भीर होते हैं, उसी प्रकार वे तालाब भी निर्मल और गंभीर (गहरे) हैं। कवियोंकी वाणीमें सरलता होती है अर्थात् नव रसोंसे युक्त होती है उसी प्रकार वे सरोवरभी सरस अर्थात् जलसे पूरे हैं। कवियोंके वचन पद्यबद्ध होते हैं, वे सरोवरभी पद्म-वंध कमलोंसे सुशोभित होरहे हैं। वहांकी पर्वतीय कंदराओं में किन्नर जातिके देव लोग अपनी देवांगनाओंके साथ विहार करते हुए सदा गाया करते हैं। वहांके वन इतने रमणीय इतने सुन्दर होते हैं कि उन्हें देखकर स्वर्गके देवता भी कामके वशमें होजाते हैं और वे अपनी देवांगनाओंके साथ क्रीड़ाएं करने लग जाते हैं। मगधमें स्थान स्थान पर ग्वालोंकी स्त्रियां गायें

चराती हुई दिखलाई देती थीं ! वे ऐसी सुन्दरी थीं कि उन्हें देखकर पथिक लोग अपना मार्ग भूल जाते थे। वहांकी साधारण जनता धर्म अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थोंमें रत रहती थीं। इसके साथही जिन-धर्मके पालनमें अपूर्व उत्साह दिखलाती थीं शीलव्रत उनका शृंगार था। वहां जिनेन्द्रदेवके गर्भ कल्याणकके समय जो रत्नोंकी वर्षा होती थी, उसे धारणकर वह भूमि वस्तुतः रत्नगर्भा हो गयी थी।

उसी मगधमें स्वर्ग लोक के समान रमणीक राजगृह नामका एक नगर है। वहाँ मनुष्य और देवता सभी निवास करते हैं। नगरके चारों ओर एक विस्तृत कोट बना हुआ था। वह कोट पक्षियों और विद्याधरोंके मार्गका अवरोधक था एवं शत्रुओंके लिये भय उत्पन्न करता था। उस कोटके निम्नभाग में निर्मल जलसे भरी हुई खाई थी। उसमें खिले हुए कमल अपनी मनोरम सुगन्धिसे भ्रमरोंको एकत्रित कर लिया करते थे। नगरमें चन्द्रमाके वर्ण जैसे श्वेत अनेक जिनालय सुशोभित हो रहे थे, जिनके शिखरकी पताकायें आकाशको छूनेका प्रयत्न कर रही थीं। वहांके मानववृन्द जल-चन्दन आदि आठों द्रव्यों से भगवान श्री जिनेन्द्र देवके चरण कमलोंकी पूजा कर उनके दर्शनोंसे अत्यन्त प्रसन्न होते थे। राजगृहके धर्मात्मा पुरुष मांगने वालोंकी इच्छासे भी अधिक धन प्रदान करते थे तथा इस प्रकार चिरकालतक धनका अपूर्व संग्रह कर कुबेरको भी लज्जित करनेमें कुण्ठित नहीं होते थे। वहांके नवयुवक अपनी स्त्रियोंको अपूर्व सुख पहुंचा रहे थे। इसलिये वहांकी सुन्दरियों

को देखकर देवांगनाएं भी लज्जित होती थीं। वे अपने हाव-भाव, विलास आदिके द्वारा अपने पतिको स्वर्गीय सुखोंका उपभोग कराती थीं। नगरके महलोंकी पंक्तियां अत्यन्त ऊंची थी। उनमें सुन्दरता और सफेदी इतनी अधिक थी कि उनके समक्ष चन्द्रमाको भी थोड़ी देरके लिये लज्जित होना पड़ता था। साथ ही बाजारकी कतारें भी इतनी सुन्दरताके साथ निर्माण कराई गई थीं कि, जिन्हें देखकर मुग्ध हो जाना पड़ता था। उसकी,दीवारें मणियोंसे सुशोभित थीं। वहां स्वर्ण रौप्य अन्न आदिका हर समय लेन देन होता रहता था। उस समय नगरका शासन भार महाराज श्रेणिकके हाथमें था। वे सम्यग्दर्शन धारण करनेवाले थे। समस्त सामन्तोंके मुकुटोंसे उनके चरण-कमल सूर्यसे देदीप्यमान हो रहे थे। उनके वैभवशाली राज्यमें प्रजा सुखी थी, धर्मात्मा थी। प्रजा धर्म साधनमें सर्वदा तल्लीन रहती थी। अतएव उन्हें भय, मानसिक वेदना, शारीरिक संताप, दरिद्रता आदिका कभी शिकार नहीं वनना पड़ता था।

महाराज श्रेणिक अत्यन्त रूपवान थे। वे अपनी सुन्दरता-से कामदेवको भी लज्जित कर देते थे। उनका तेज इतना प्रबल था जो सूर्यको भी जीत लेता था तथा वे याचकोंको इतना धन देते थे कि जिसे देखकर कुवेरको भी लज्जित होना पड़ता था। शायद विधिने समुद्रसे गम्भीरता छीनकर, चन्द्रमा से सुन्दरता लेकर, पर्वतसे अचलता, इन्द्रगुरु बृहस्पतिसे बुद्धि छीनकर श्रेणिकका निर्माण किया था। महाराज श्रेणिकमें

तीनों प्रकारकी शक्तियां थी। वे सन्धि-विग्रह आदि छः गुणोंको धारण करनेवाले थे। वे अर्थ, धर्म, काम सबको सिद्ध करते हुए भी अपनी कर्मेन्द्रियोंको वशमें रखते थे। उनकी विमल कीर्ति चन्द्रमाके निर्मल प्रकाशकी भांति चारों ओर व्याप्त थी। यदि ऐसा न होता तो देवांगनाओं द्वारा उनके गुणोंके गानकी आशा नहीं की जासकती थी। उनके शासनका अभूतपूर्व प्रभाव चारों ओर फैलरहा था। महाराजके शत्रुगण ऐसे व्याकुल होरहे थे, मानों उनका क्षणभरमें ही विनाश होनेवाला है। उनकी प्रभा द्वितीयाके चन्द्रमाकी क्षीण कलाकी भाति क्षीण होगयी थी। महाराज श्रेणिककी प्रतिभाके सबलोग कायल थे। उनकी प्रखर बुद्धि स्वभावसे ही प्रतापयुक्त थी। अतएव वह चारोंप्रकार की राजविद्याओंको प्रकाशित कर रही थीं। श्रेणिककी पत्नी का नाम चेलना था। वह कामदेवकी पत्नी रति और इन्द्रकी इन्द्राणीकी भांति कांति और गुणोंसे सुशोभित थी। उसके नेत्र मृगके से थे। उसका मुख चन्द्रमा जैसा कांतिपूर्ण था। केश श्यामवर्णके थे। कटि क्षीण, कुच कठिन और बड़े आकारके थे। उसकी सुन्दरता देखने लायक थी। विस्तीर्ण ललाट, भौहें टेढ़ी और नाक तोतेकी तरह थी। उसके वचन और गमन मदोन्मत्त हाथीकी तरह थे। उसकी नाभी सुन्दर और उसके अंग प्रत्यंग सभी सुन्दर थे। वह सदा सन्तुष्ट रहती थी। उसकी आत्मा पवित्र और बुद्धि तीक्ष्ण थी। शुद्ध वंशमें उत्पन्न होनेके कारण वह हाव भाव विलास आदि सभी गुणोंसे सुशोभित थी। वह स्त्रियोंमें प्रधान और पतिव्रता थी। याचकोंके लिए

हितकरनेवाला उत्तम दान देनेवाली थी। वह शील और व्रतों को धारण करनेवाली थी। उसका हृदय सम्यग्दर्शनसे विभूषित था। वह सदा जिनधर्मके पालनमें तत्पर रहा करती थी। अनेक देशोंके अधिपति, विभिन्न प्रकारकी सेनाओंसे सुशोभित अत्यंत समृद्धिशाली महाराज श्रेणिक, अपनी पत्नी चेलनाके साथ भिन्न भिन्न प्रकारके सुखोंका उपभोग करते हुए जीवन यापन कर रहे थे।

श्रेणिक के प्रश्न का वर्णन

एक वार अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी समवशरणके साथ अनेक देशोंमें बिहार करते हुए विपुलाचलके मस्तकपर आकर विराजमान हुए। भगवान तीन छत्रोंसे सुशोभित थे। वे अपने उपदेशामृतसे भव्यजीवोंके ताप हर लेते थे। उनके साथ गौतम गणधर आदि अनेक मुनियोंका विस्तृत समुदाय था। साथही सुरेन्द्र नागेन्द्र खगेन्द्र आदि उनकी पादवन्दना कर रहे थे। भगवानके पुण्यके माहात्म्यसे हिंसक जीव भी अपना अपना वैर भाव छोड़कर परस्पर प्रेम करने लग गये थे। भगवानके आगमनसे पर्वतकी छटा निराली होगयी। वृक्ष फल फूलोंसे सुशोभित होगये। उन वृक्षोंसे एक प्रकारकी मीठी सुगन्धि फैलने लगी। वे सब कल्पवृक्ष जैसे सुन्दर दीखने लगे। भगवान महावीर स्वामीको देखकर माली चकित होगया।

उसने बड़ी भक्तिके साथ भगवानको नमस्कार किया। इसके पश्चात वह सब ऋतुओंके फल पुष्प लेकर महाराज श्रेणिक के राजद्वारपर जा पहुंचा। वहां पहुंचकर मालीने द्वारपालसे निवेदन किया कि तू महाराजको सूचना दे आ कि उद्यानका माली आपकी सेवामें उपस्थित होना चाहता है। द्वारपालने जाकर महाराजसे निवेदन किया कि आपके उद्यानका माली आपसे मिलनेकी आज्ञा मांग रहा है। महाराजने मालीको लानेके लिए तत्काल आज्ञा दी। यथा समय माली महाराजके सन्मुख पहुंचा। महाराज सिंहासनपर बैठे हुए थे। मालीने हाथ जोड़े और फल-पुष्प समर्पितकर सिर झुकाया। असमयमें फल-फूलों को देखकर महाराजकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। वे अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने तत्काल ही मालीसे पूछा—ये पुष्प तुम्हें कहां प्राप्त हुए हैं। उत्तर देते हुए मालीने बड़े विनम्र शब्दोंमें कहा—महाराज! विपुलाचल पर इन्द्रादि द्वारा पूज्य श्रीमहावीर स्वामीका आगमन हुआ है। उनके प्रभावका ही यह फल है कि वृक्ष असमयमें ही फल-फूलोंसे लद गयेहैं। अभी माली की वात समाप्त भी नहीं हो पायी थी कि महाराज सिंहासनसे उठकर खड़े होगये, और विपुलाचल पर्वतकी दिशाकी ओर सात पग चलकर भगवान महावीर स्वामीको उन्होंने प्रणाम किया। इसके वाद पुनः सिंहासन पर विराजमान होगये। महाराजने प्रसन्नताके साथ वस्त्राभूषणों से मालीका सत्कार किया। यह ठीक ही है, ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो भगवानके पधारने पर सन्तुष्ट न हो।

महाराजने श्री महावीर स्वामीके दर्शनार्थ चलनेके लिए नगरमें भेरी बजवा दी। नगरके सभी भव्यलोग चलनेके लिए प्रस्तुत हुए। श्रेणिक अपनी प्रिया चेलनाके साथ हाथी पर सवार हो प्रसन्नता पूर्वक भगवानके दर्शनके लिए चले। सब लोग महावीर स्वामीके शुभ समवशरणमें जा पहुंचे। महाराज श्रेणिकने मोक्षरूपी अनन्त सुख प्रदान करने वाली भगवानकी स्तुति आरम्भ की—हे भगवन्! आप परम पवित्र हैं, अतएव आपकी जय हो! आप संसार-सागरसे पार करने वाले हैं, अतः आपकी जय हो। आप सबके हितैषी हैं, अतएव आपकी जय हो। आप सुखके समुद्र हैं, अतः आपकी जय हो। हे परमेष्ठिन! आप समस्त संसारी जीवोंके परम मित्र हैं, आप संसाररूपी महासागरसे पार उतारनेके लिए जहाजके तुल्य हैं, अतएव मोक्ष प्रदान कराने वाले भगवान, आपको बारम्बार नमस्कार है। आप गुणोंके भंडार हैं और संसारकी मायासे भयभीत हैं। आप कर्मरूपी शत्रुओंके संहारक हैं और विषयी विषको दूर करने वाले हैं, अतएव आपको नमस्कार है। हे गुणोंके आगार, हे भगवन्! हे मुनियोंमें श्रेष्ठ जिनराज! आप कवियोंकी वाणीसे भी परे हैं, आपके सद्गुणोंका वर्णन करना सरस्वतीकी शक्तिके बाहरकी बात है। इस प्रकार भगवानकी स्तुति कर महाराज श्रेणिक गौतम गणधर आदि अन्यान्य मुनियोंको नमस्कार कर मनुष्योंके कोठेमें बैठ गये। थोड़ी देर बाद भगवान महावीर स्वामीने भव्यजीवोंको प्रबुद्ध करनेके लिये मनोहर धर्मोपदेश देना आरम्भ किया—

'मुनि और श्रावकोंके धर्ममें दो भेद हैं। मुनिधर्म मोक्षका साधन होता है और श्रावक धर्मसे स्वर्ग-सुखकी प्राप्ति होती है। सम्यग्दर्शन,सम्यक्ज्ञान और सम्यग्चारित्रके भेदसे मोक्षमार्ग तीन प्रकारका होता है। अर्थात् तीनोंका समुदाय ही मोक्षमार्ग है। उनमें सम्यग्दर्शन उसे कहते हैं; जिसमें जीव अजीव आदि सातों तत्वोंका यथार्थ श्रद्धान किया जाता हो। वह भी दो प्रकारका होता है--एक निसर्गज-विना उपदेशादिके, और दूसरा अधिगमज अर्थात् उपदेशादि द्वारा। इन दोनोंके भी औपशमिक,क्षमिक और क्षायोपशमिक भेदसे तीन भेद और कहेगये हैं। अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व इन सप्त प्रभृतियोंके उपशम होनेसे औपशमिक सम्यग्दर्शन प्रकट होता है और सातों प्रकृतियोंके क्षय होनेसे क्षायिक सम्यग्दर्शन प्रकट होता है और पूर्वकी छः प्रकृतियोंके उदयाभावी क्षय होने तथा उन्हीं सत्तावस्थित प्रकृतियोंके उपशम होनेसे एवं सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व के उदय होनेसे क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होता है। पदार्थोंके सत्य ज्ञानको सम्यक्ज्ञान कहते हैं। वह सम्यक्ज्ञान मति, श्रुत, अवधि मनः पर्यय और केवलज्ञानके भेदसे पांच प्रकारका होता है। जैन शास्त्रोंके सिद्धान्तके अनुसार पाप रूप क्रियाओंके त्यागको सम्यग्चारित्र कहते हैं। वह पांच महाव्रत,पांच समिति और तीन गुप्ति भेदसे तेरह प्रकारका होता है। अठारह दोषोंसे रहित सर्वज्ञदेवमें श्रद्धान करना, अहिंसारूप धर्ममें श्रद्धान करना एवं परिग्रह रहित गुरुमें श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कह-

लाता है। संवेग, निर्वेद, निंदा, गर्हा, शम, भक्ति, वात्सल्य और कृपा ये आठ सम्यग्दर्शनके गुण हैं। भूख, प्यास, बुढ़ापा, द्वेष, निद्रा, भय, क्रोध, राग, आश्चर्य, मद, विषाद, पसीना, जन्म, मरण, खेद, मोह, चिन्ता, रति ये अठारह दोष हैं। सर्वज्ञ देव इन दोषोंसे सर्वथा रहित होते हैं। आठ मद, तीन मूढ़ता, छः अनायतन और शंका कांक्षा आदि आठ दोष मिलकर सम्यग्दर्शनके पच्चीस दोष हैं। द्यूत, मांस, मद्य, वेश्या, परस्त्री, चोरी और शिकार ये सप्त व्यसन हैं। बुद्धिमानोंको इनका भी त्याग कर देना चाहिए। मद्य, मांस, मधुके त्याग और पंच उदुम्बरोंके त्याग ये आठ मूलगुण है। प्रत्येक गृहस्थके लिए इन मूल गुणोंका पालन करना बहुतही आवश्यक है। मद्यका त्याग करने वालेको छाछ मिले हुए दूध, बासी दधी आदि का भी त्याग कर देना चाहिये। इसी प्रकार मांसका त्याग करने वाले के लिए चमड़े में रखा हुआ घी, तैल, पुष्प, शाक मक्खन, कंद मूल और घुना हुआ अन्न कदापि नहीं खाना चाहिए। धर्मात्मा लोगोंके लिए बैगन, सूरन, हींग, अदरक और बिना छना हुआ जल भी त्याज्य है। अज्ञात फलोंको तो सर्वथा त्याग कर देना ही चाहिए। ऐसे ही बुद्धिमान लोगोंको चाहिए कि वे मधुका परित्याग कर दें। कारण शहद निकालते समय अनेक जीवोंका घात होता है। उसमें मक्खियोंका रुधिर और मैला मिला हुआ होता है। इसलिए वह लोकमें निन्दनीय है। इसके अतिरिक्त श्रावकोंको दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्त त्याग, रात्रिभुक्ति त्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग परिग्रहत्याग,

अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग इन ग्यारह प्रतिज्ञाओंका पालन करना चाहिए। अहिंसा अणुव्रत, सत्य अणुव्रत, अचौर्य अणुव्रत, ब्रह्मचर्य अणुव्रत, परिग्रह परिमाण अणुव्रत ये पांच प्रकारके अणुव्रत कहलाते हैं। श्रावकोंको उचित है कि इनका भी पालन करे।

दिग्व्रत, देशव्रत, और अनर्थदण्ड विरति व्रत ये तीन गुण-व्रत हैं। श्रावकाचारको जाननेवाले श्रावक इनका उत्तम रीति से पालन करें। छः प्रकारके जीवोंपर कृपा करना, पंचेन्द्रियोंको वशमें करना एवं रौद्र ध्यान तथा आर्त ध्यानके त्याग कर देने को सामायिक कहते हैं। सामायिकका पालन नियमित रूपसे श्रावकोंके लिए अनिवार्य होता है। अष्टमी, चौदशके दिन प्रोषधोपवास अत्यन्त आवश्यक है। प्रोषधोपवासके भी तीन भेद माने गये हैं—उत्तम मध्यम और जघन्य। केसर चन्दन आदि पदार्थोंके लेपनको भोग कहते हैं और वस्त्राभूषणादिको उपभोग। इन दोनोंकी संख्या नियत कर लेनी चाहिए। इसको भोगोपभोगपरिमाण व्रत कहते हैं। श्रावकोंके लिए यह भी आवश्यक है। शास्त्रदान, औषधिदान, अभयदान और आहारदान ये चार प्रकारके दान हैं। प्रत्येक गृहस्थको चाहिए कि वे अपनी शक्तिके अनुसार इन दानोंको गृही त्यागी मुनियोंको दे। वाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे शुद्ध तपश्चरण दो प्रकारके होते हैं। इन्हें तत्व ज्ञानियोंको अपने कर्म नष्ट करनेके लिए उपभोगमें लाना चाहिए।'

इस प्रकारके धर्मोपदेशको सुनकर महाराज श्रेणिकको

प्रसन्नता हुई। सत्य ही है—अमृतके घड़ेकी प्राप्तिसे कौन संतुष्ट नहीं होता। अर्थात् सभी सन्तुष्ट होते हैं। पश्चात् महाराज श्रेणिक गणधरोंके प्रभु स्वामी सर्वज्ञ देव भगवानको नमस्कार कर खड़े होगये और भगवान गौतम गणधरके पूर्व वृत्तान्त पूछने लगे—भगवन! ये गौतम स्वामी कौन हैं? किस पर्यायसे यहां आकर इन्होंने जन्म धारण किया है। इन्हें किस कर्मसे ये लब्धियां प्राप्त हुई हैं। ये सब क्रमानुसार मुझे बतलाइये। आपके निर्मल वचनोंसे मेरा सारा सन्देह दूर हो जायगा। आपके वचन रूपी सूर्यके समक्ष मेरे संदेहरूपी अंधकारका नाश हो जाना निश्चित है।

धर्मके प्रभावसे उच्चकुलकी प्राप्ति और मिष्ट वचनोंकी प्राप्ति होती है। उस पर सबका प्रेम होता है। वह सौभाग्यशाली होता है और उत्तम पदको प्राप्त होता है। उसे सर्वांग सुन्दर स्त्रियां प्राप्त होती हैं, और स्वर्गकी प्राप्ति होती है। उसे उत्तम बुद्धि, यश, लक्ष्मी और मोक्षतक प्राप्त होते हैं। अतः श्रेणिकने जैन धर्ममें निष्ठा कर अपनी सद्बुद्धिका परिचय दिया ॥ ११४ ॥

द्वितीय अधिकार

भगवान जिनेन्द्र देवने अपने शुभ वचनोंके द्वारा संसारके दूषित मलका प्रक्षालन करते हुए कहा—श्रेणिक! तू निश्चिन्तता पूर्वक श्रवण कर। मैं पाप और पुण्य दोनोंसे प्रकट होनेवाले श्री गौतम गणधर स्वामीके पूर्व भवोंका वर्णन करता हूं। भरत क्षेत्रमें अनेक देशोंसे सुशोभित, अत्यन्त रमणीय अवंती नामका एक देश है। उस देशमें मुनिराजों द्वारा एकत्रित किये हुए यशके समूहकी तरह विशाल तथा ऊंचे श्वेतवर्णके जिनालय शोभित थे। वहां पथिकोंको इच्छित फूल, फल प्रदान करनेवाली वृक्ष पंक्तियां सुशोभित हो रही थीं। वहां समय पर मेघों द्वारा सींचे हुए खेत, सब प्रकारकी सम्पत्ति, फल फूलसे लदे हुए थे। उस देशमें पुष्पपुर नामका एक नगर था। वह नगर ऊंचे कोटसे घिरा हुआ, सुन्दर उद्यानोंसे सुशोभित नन्दन वनको भी लज्जित कर रहा था। वहांके देव-मंदिर जिनालय और ऊंचे ऊंचे राजमहल अपनी शुभ्र छटासे हंसते हुए जान पड़ते थे। वहांके अधिवासी जैन-धर्मके अनुयायी थे। वे धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थोंको सिद्ध करने वाले थे। वे दानी और बड़े यशस्वी थे। वहांकी ललनाएं सुन्दर शीलवती, पुत्रवती, चतुर और सौभाग्यवती थीं। इसलिये वे कल्पलताओंकी तरह सुशोभित होती थीं।

नगरका राजा महीचन्द्र था जो दूसरा चन्द्रमा ही था। उसकी सुन्दरता अपूर्व थी। अनेक राजा तथा जन समुदाय बड़ी भक्तिके साथ उसकी सेवा करते थे। इतना सब कुछ होते हुए भी उसके हृदयमें अर्हंत देवके प्रति बड़ी भक्ति थी। वह धनका भोग करनेवाला, दाता, शुभ कामोंको सम्पन्न करनेवाला,नीतिज्ञ और गुणी था। अतः वह महाराज भरतके समान जान पड़ता था। दुष्टोंके लिये वह कालके समान और सज्जनोंका प्रतिपालक था। राजा महीचन्द्र राजविद्या और युद्धविद्या दोनोंमें निपुण था। राजाकी सुन्दरी नामकी रानी थी। वह अत्यन्त गुणवती, रूपवती, पतिव्रता और अनेक गुणोंसे सुशोभित थी। वह राजा सुन्दरीके साथ राज्य सामग्रीका उपभोग करते हुए पंचपरमेष्ठियोंको नमस्कार आदि करते हुए सुख पूर्वक समय व्यतीत कर रहा था।

उस नगरके बाहर एक दिन अंगभूषण नामके मुनिराजका आगमन हुआ। वे आमके पेड़के नीचे एक शिलापर आसन लगा कर बैठ गये। उनके साथ चारों प्रकारका संघ था। वे अवधिज्ञानधारी सम्यग्दर्शन से विभूषित थे। कामरुपी शत्रुओंको मर्दन करनेवाले थे और सम्यक्‌चारित्रके आचरण करनेमें सदा तत्पर थे। तपश्चरणसे उनका शरीर अत्यंत क्षीण होगया था। क्रोध, कषाय, मान रूपी महापर्वतको चूरकरनेके लिए वे वज्रके समान तीक्ष्ण थे। मोहरूपी हाथीके लिए सिंहके समान तथा इन्द्रिय रूपी मल्लोंको परास्त करनेवाले थे। इसके अतिरिक्त परिषहोंको जीतनेवाले सर्वोत्तम और छः आवश्यकों

से सुशोभित थे। वे मूलगुणों और उत्तरगुणोंको धारण करने वाले थे। राजा महीचन्द्रको जब यह बात मालूम हुई कि नगर के बाहर मुनिराजका आगमन हुआ है, तब वह अपनी रानी और नगर निवासियोंको लेकर उनके दर्शनके लिये चला। वहां पहुंचनेपर राजाने जल चन्दन आदि आठ द्रव्योंसे मुनिराजके चरण कमलोंकी पूजा की। इसके बाद बड़ी नम्रताके साथ उन की स्तुति कर नमस्कार किया। पुनः उनसे धर्मवृद्धिका आशीर्वाद प्राप्त कर उनके समीप ही बैठ गया। उस वनमें लोगोंका बड़ा समुदाय देख अत्यन्त कुरूपा तीन शूद्रकी कन्यायें—जो कहीं जारही थीं, आकर बैठ गयीं। इसके बाद मुनिराजने राजा महीचन्द्र और जन समुदायके लिये भगवान जिनेन्द्रकी वाणी-से प्रकट हुआ लोक कल्याणकारक धर्मोपदेश देना आरम्भ किया। वे कहने लगे—देव, शास्त्र और गुरुकी सेवा करनेसे धर्मकी उत्पत्ति होती है। एकेन्द्रिय और द्वय इन्द्रिय, समस्त प्राणियोंकी रक्षा करनेसे धर्म उत्पन्न होता है। जीवोंके उप-कारसे धर्म उत्पन्न होता है और धर्मके मार्गोंको प्रदर्शित करने से सर्वोत्तम धर्म प्रकट होता है। मन, वचन, कायकी शुद्धता द्वारा सम्यग्दर्शनके पालन करने, व्रतोंके धारण करने तथा मद्य मांस मधुके त्याग करनेसे धर्मकी अभिवृद्धि होती है। पांचों इन्द्रियोंको वशमें करने तथा अपनी शक्तिके अनुसार दान करने से धर्मकी अभिवृद्धि होती है। ऐसे अन्य भी बहुतसे उपाय हैं, जिनसे जैन धर्मकी वृद्धि होती है और लोक तथा परलोकमें सांसारिक जीवोंको उत्तम सुख प्राप्त होता है। फल यह होता

है कि धर्मके प्रभावसे मानव जातिको शुद्ध रत्नत्रयकी प्राप्ति होती है। रत्नत्रयके प्राप्त होनेके बाद मुक्तिकी प्राप्ति हो जाती है। यह धर्मरूपी कल्पवृक्ष इच्छाके अनुसार फल देने वाला, हर्ष उत्पन्न करने वाला एवं सौभाग्यशाली बनाने वाला है। इससे कान्ति, यश सभी प्राप्त होते हैं। अपने पुण्यके प्रभावसे भरत क्षेत्रके छः खण्डोंकी भूमि, नवनिधि, चौदह रत्न और अनेक राजाओंसे सुशोभित चक्रवर्तीकी विभूति प्राप्त होती है। उसी पुण्यकी महिमासे मनुष्य देवांगनाओंके समान रूपवती और अनेक गुणोंसे सुशोभित ऐसी अनेक स्त्रियोंका उपभोग करते हैं। यही नहीं विद्वान, वीर और शौभाग्यशाली पुत्र भी पुण्यके प्रभावसे ही प्राप्त होते हैं। बड़े बड़े राजा महाराजा तथा धनवान लोग—जो सोनेके पात्रमें भोजन करते हैं, वह भी पुण्यके प्रभावके बिना नहीं प्राप्त होता। राजन्! शरीर का स्वस्थ रहना, उत्तम कुलमें जन्म ग्रहण करना, बड़ी आयु को प्राप्त करना तथा सुन्दर रूपका मिलना ये सब पुण्यके प्रभाव हैं। इसे धर्मका ही फल समझना चाहिये। यह भी स्मरण रहे कि देव, शास्त्र और गुरुकी निन्दासे पाप उत्पन्न होता है तथा सम्यग्दर्शन व्रत आदि नियमोंको भंग करनेसे महान पापका भागी बनना पड़ता है। सातों व्यसनोंके सेवनसे भी भारी पाप लगता है। पंचेन्द्रियोंके विषयोंके सेवनसे भी पाप लगता है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायोंके संयोगसे अन्य जीवोंको पीड़ा पहुंचानेसे और निन्द्य आचरणोंके व्यवहारसे पाप उत्पन्न होता है। पर स्त्री

सेवनसे, दूसरेके धन अपहरणसे, किसीकी धरोहर ले लेनेसे कठिन पाप होता है, अर्थात् महापाप लगता है। जीवोंकी हिंसा करने, झूठ बोलने, अधिक परिग्रहकी इच्छा रखने और किसीके कर्ममें विघ्न उपस्थित करनेसे भी पापका भागी होना पड़ता है। मद्य, मांस, मधु भक्षण और हरे कन्द-मूल आदि पदार्थोंके भक्षणसे भी पाप लगता है। विना छाने हुए जलसे भी वड़ा पाप लगता है। कुत्ता, विल्ली आदि दुष्ट जीवोंके पालन-पोषणसे भी पापका भागी बनना पड़ता है। इस प्रकार के पापकर्मके उदयसे ये जीव कुरूप, लंगड़े, काने, टोंटे, वौने; अन्धे, कम आयु वाले, अगोंपांग रहित तथा मूर्ख उत्पन्न होते हैं। पापकर्मके उदयसे ही दरीद्री नीच अनेक शारीरिक व्याधियोंसे पीड़ित और दुःखी उत्पन्न होते हैं। जीवोंके अपयश वढ़ाने वाले लम्पट दुराचारी तथा नित्य कलह करनेवाले पुत्र-का उत्पन्न होना भी पापका ही कारण है। अक्सर पापकर्म से ही स्त्रियां काली, कलूटी तथा दुर्वचन कहनेवाली मिलती हैं। साथ ही पापकर्मसे ही लोगोंको भीख मांगनेके लिए विवश होना पड़ता है। यहांतक कि उन्हें स्वादहीन मिट्टीके वर्तनमें रखा हुआ भोजन करना पड़ता है। अतएव राजन्! इस संसारकी जितनी दुःख प्रदान करनेवाली वस्तुएं हैं, वे सब की सब पाप कर्मोंके उदयसे ही प्राप्त होती हैं। संसारमें जो कुछ भी बुरा है, उसे पापका ही फल समझना चाहिये। मुनि-राजने इस प्रकार पुण्य और पापके फल कह सुनाये। महिचन्द्र को अपूर्व संतोष हुआ। इधर राजाने तीनों कुरूपा कन्याओंको

देखा। वे दीन स्वभाव की, दुखी और माता-पिता भाई आदि से रहित थीं। उन्हें देखकर राजाका हृदय दयापूर्ण हो गया। उनके नेत्र खिल उठे तथा मन प्रसन्न होगया। इस प्रकार का परिवर्तन देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सद्भावके साथ उन्हें देखने लगे। इसके पश्चात् उन्होंने मुनिराजकी स्तुति कर पूछा—भगवन! इन कुरूपा कन्याओंको देख मेरे हृदयमें प्रेमके भाव क्यों अंकुरित होरहे हैं। उत्तरमें मुनिराज कहने लगे—राजन! इस स्थल पर प्रेम उत्पन्न होनेका कारण पूर्व-भवका सम्बन्ध है। मैं बतलाता हूं। ध्यान देकर श्रवण करो।

भरतक्षेत्रमें ही काशी नामका एक सुविस्तृत देश है। वह तीर्थंकरोंके पंच-कल्याणकोंसे सुशोभित है। वहांके नगर ग्राम और पत्तनकी शोभा अपूर्व है। वह रत्नोंकी खानके नाम से प्रसिद्ध है। उसी देशमें बनारस नामका एक अत्यन्त मनोहर नगर है। वह इतना सुन्दर है कि,मानों विधिने अलका नगरीको जीतनेके लिए ही उसका निर्माण किया हो। आकाशको स्पर्श करनेवाले उसके चारों ओर सुविशाल कोट हैं। कोटकी ऊंचाई इतनी ऊंची है, जिससे प्रतीत होता है कि क्रोध करने पर वह सूर्यके तेज और बादलोंके समूहको भी रोक सकती हैं। कोटके चारों ओर खाई थी, जिसे देखकर शत्रुओंके छक्के छूट जाते थे। वह खाई निर्मल और गंभीर जलसे परिपूर्ण थी। इसलिए वह एक सुपटु कविकी कविताके समान सुशोभित थी। वहांके जिनालय अपनी फहराती हुई शुभ्र ध्वजासे भव्य जीवों को पवित्र करनेके उद्देश्यसे बुला रहे थे। वहांके मकानोंकी

पन्कियां ऊंची और भव्य थीं। उन पर तरह तरहके चित्र बने हुए थे। वे वर्फ और चन्द्रमाकी तरह शुभ्र थीं। इसीलिए दर्शनीय थीं। उन्हें देखकर यही प्रतीत होता था कि मुक्ताकी सुन्दर मूर्तियां प्रस्तुत की गयी हों।वहांके मनुष्य स्वभावसे ही दान करने वाले थे। वे भगवान जिनेन्द्रदेवकी सेवामें संलग्न रहने वाले थे। परोपकार, धर्मकार्यमें उनके आचरण अनुकरणीय थे। वहांकी स्त्रियोंका तो कहना ही क्या? वे देवांगनाओंको भी रूपमें परास्त करती थीं। वे सौभाग्यवती गुणवती पतिप्रेममें सदा तत्पर रहनेवाली थीं। वहांके बाजार भी अपनी अपूर्व विशेपता रखते थे। दुकानोंकी पंक्तियां इतनी सुन्दरता के साथ निर्मितकी गयी थीं कि,उन्हें देखते रहनेकी इच्छा होती थी। वह नगर सोने चांदी रत्न और अन्नादिसे सर्वथा भरपूर था। संध्याके वादसे वहां की स्त्रियां ऐसे मधुर स्वरमें गाने लगती थीं कि आकाश मार्गसे जाते हुए चन्द्रमाको भी उनके लालित्य पर मुग्ध होकर कुछ देरके लिए रुक जाना पड़ता था। इस प्रकार वे चन्द्रमाको भी रोक लेनेमें समर्थ थी। रात्रि कालमें अपने इच्छित स्थानको गमन करने वाली वेश्याएं भी चञ्चल नदीकी भांति लहराती हुई देख पड़ती थीं। बावड़ियों से जल भरने वाली पनिहारियां भी क्रीड़ा करती हुई नजर आती थीं। कमलोंकी सुगन्धिसे भ्रमण करते हुए भौंरे उन्हें दुखी कर रहे थे। उनकी जलक्रीड़ासे उनके शरीरसे जो केसर धुलकर निकल रही थी, उससे भौंरोंके शरीर पीले पड़ रहे थे। और उन्हीं सरोवरोंमें कामी पुरुष अपनी रमणियोंके साथ

जलक्रीड़ा कर रहे थे। नगरकी दूसरी ओर खलिहानोंमें नाजकी राशियां शोभित हो रही थीं। वे राशियां किसानोंको आनन्द देनेवाली थीं। वहांके खेतोंकी विशेषता थी कि वे हर प्रकारके पदार्थ उत्पन्न करते रहते थे। सड़कके दोनों किनारों पर सघन पेडोंकी सुन्दर पंक्तियां लगी हुई थीं, जिनकी सुशीतल छायामें श्रान्त पथिक लोग विश्राम किया करते थे। उन वृक्षोंकी डालियां फलोंके भारसे नत हो रही थीं। नगरके चारों ओर सुन्दर और विशाल उद्यान थे, जहांकी लताएं पुष्प और फलोंसे सुशोभित थीं। वे लताएं मनोहर सरस एवं विलासिनी स्त्रियोंके समान शोभित थीं।

उस नगरकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि, वहां कोई रोगी नहीं था। यदि सरोग था तो राजहंस ही। वहां ताड़नका तो नाम नहीं था। हां कपासका ताड़न होता था और उससे रुई निकाली जाती थी। वहां किसीके पतनकी भी संभावना नहीं थी। यदि पतन था तो वृक्षोंके पत्तोंका; क्योंकि वही ऊपर से नीचे गिरते थे। बन्धन भी केशपाशोंका ही होता था। वे ही बडी सतर्कतासे बांधे जाते थे। वहां दण्ड, ध्वजाओंमें ही था और किसीको दण्ड नहीं दिया जाता था। भंग भी कवियों के रचे हुए छन्दों तक ही सीमित था और किसीका भंग नहीं होता था। हरण स्त्रियोंके हृदयमें ही था और किसीका हरण नहीं किया जाता था। स्त्रियां ही पुरुषोंके हृदयका हरण कर लेती थीं। वहां भय भी नवोढ़ा स्त्रियोंको ही होता और कोई कभी भयभीत नहीं होता था। इस नगरके राजाका नाम

विश्वलोचन था। वह शत्रु समुदायके लिए सिंह के समान था और उसकी कांति सूर्यको भी परास्त करने वाली थी। वह याचकोंको इच्छाके अनुसार दान दिया करता था। अतएव वह मनकी उत्कट भावनाओंको पूर्ण करने वाले कल्पवृक्षोंको भी सदा जीतता रहता था। संभवतः विधाताने इन्द्रसे प्रभुत्व लेकर कुवेरसे धन और चन्द्रमासे शीतलता और सुन्दरता लेकर उसका निर्माण किया था। उसके अंग प्रत्यंग ऐसे वने थे, मानों सांचेमें ढाले गये हों। जिस प्रकार हरिण सिंहके भय से जंगलका परित्याग कर देता है, उसी प्रकार विश्वजीतके महाप्रताप को देखकर उसके शत्रु अपनी प्राण-रक्षाके लिए देश का त्याग कर देते थे। उसका विस्तृत ललाट ऐसा मनोरम प्रतीत होता था, मानो विधिने अपने लिखनेके लिए ही उसे बनाया हो। उसके भुजा रूपी दण्ड सुन्दर और जांघ तक लंबे थे। वे ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे शत्रुओंको बांधनेके लिये नाग-पाश हों। उसका सुविस्तृत वक्षस्थल देवांगनाओंको भी मोहित कर लेता था और लक्ष्मीका क्रीड़ास्थल जान पड़ता था। समुद्रोंको धारण करनेवाली गंभीर पृथ्वीकी तरह उसकी विमल बुद्धि चारों प्रकार की विद्याओंको धारण करने-वाली थी। उसकी अत्यंत उज्वल और निर्मल कीर्ति सुदूर देशों तक फैली हुई थी। विश्वजीत राजाके यहां प्रधान मंत्री सुन्दर देश किले, खजाने, और सेनाएं आदि सब कुछ थे। प्रभाव उत्साह आदि तीनों शक्तियां विद्यमान थीं। इसके अति-रिक्त संधि विग्रह, यान आसनद्वेधा आश्रय आदि छः गुण थे

इसीलिए वह राजा शत्रुओंके लिए अजेय हो रहा था। वह विश्वके सभी राजाओं में श्रेष्ठ गिना जाता था। नीति निपुण रूपवान मिष्टभाषी और प्रजाहितैषी था। उसके सिंहासनारोहणके बादसे ही राज्यकी सारी प्रजा सुखी धर्मात्मा और दानी हो गयी थी।

राजाकी विशालाक्षी नामकी पत्नी थी, जो अत्यन्त रूपवती और प्रेमकी प्रतिमूर्ति थी। वह इन्द्राणी, रति नागस्त्री और देवांगनाओं जैसी रूपवती जान पड़ती थी। रानी की गति मदोन्मत्त हाथियोंकी तरह थी। इसकी अंगुलियों के बीसों नख द्वितीयाके चन्द्रमा के समान बड़े ही मनोहर और भव्य जान पड़ते थे। उसकी जांघ केलेके स्तंभ की तरह सुकोमल और कामोद्दीपक थी। वह रानी अपने मनोरम कटिप्रदेशकी सुन्दरता से सिंहके कटिप्रदेशकी शोभाको हरण कर लेती थी। यदि ऐसा न होता तो सिंहको गुफाओंकी शरण नहीं लेनी पड़ती। उसकी नाभी गोल, मनोहर एवं गंभीर थी। वह काम रस (जल) से भरी हुई नायिकाकी भांति प्रतीत होती थी। उसके कुच विल्वफलके समान कठोर थे। वह कामीजनोंके हृदयको जीतने वाली थी। उन कुचोंके मध्य रोमराशि ऐसी प्रतीत होती थी मानों दोनोंके विरोधको दूर करनेके लिए सीमा निर्धारित कर रही हों। रानीके हाथोंकी दोनों हथेलियां लाल कोमल और सुन्दर थीं। उन पर मछली ध्वजा आदिके आकर्षक चिन्ह बने हुए थे। वह अपनी मुखाकृतिसे आकाशके चन्द्रमाको भी लज्जित करती थी। इसीलिए चन्द्रमा

महादेवकी सेवा करनेमें लग गया था। रानीकी नाक इतनी सुन्दर थी कि तोतेकी चोचोंकी सारी सुन्दरता जाती रही। तोते विचारे लज्जासे अवनत हो वनमें जा पहुंचे थे। वह अपनी सुमधुर वाणीसे पिककी वाणी भी जीत चुकी थी। संभवत यही कारण है कि कोयलोंने श्यामवर्ण धारण कर लिया है। उसके विशाल नेत्र हरिणीके नेत्रोंको भी मात करते थे। यही कारण है कि हरिणियोंने अपना बसेरा वनमें कर लिया है। रानीके दोनों कान मनोहर और कर्ण-भूषणोंसे शोभित हो रहें थे। उसकी भौहें कमान जैसी टेढ़ी और चंचल थीं, मानों वे कामरूपी योद्धाओंको परास्त करनेके लिए धनुषवाण ही हों। रानीकी सुगन्धित पुष्पोंसे गठी हुई केशराशि ऐसी सुन्दर जान पड़ती थी कि उसकी सुगंधिके लोभ से सर्प ही आगये हों। वह अपने कटाक्ष और हावभावसे सुशोभित थी। अर्थात् समस्त गुणोंसे भरपूर थी। उसके गुणोंका वर्णन करने में कोई भी समर्थ नहीं हैं। वह बड़ी रूपवती और पतिको स्ववशमें करनेके लिए औषधिके तुल्य थी। ऐसी परम सुन्दरीके साथ सुख उपभोग करता हुआ राजा जीवनयापन कर रहा था। जिस प्रकार कामदेव रतिके वशमें रहता है, ठीक उसी प्रकार उस रानीने अपने पतिको प्रेमपाशमें बाँध लिया था। राजा विश्वलोचनको उस विशालाक्षीके स्पर्श,रूप,रस, गंध और शब्दसे जो ऐहिक सुख उपलब्ध थे, उसे वही अनुभव कर सकता है, जिसे ऐसी सुन्दरी पत्नी मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हो।

कुछ समय व्यतीत होनेपर ऋतुराज बसंतका आगमन हुआ।

स्वभावसे ही वसन्त ऋतुमें तरुणोंमें कामोपभोगकी लालसा प्रबल हो उठती है। समस्त वृक्ष फल-फूलोंसे लद गये। उनपर पक्षियोंका निवास हो गया। उस समय तरुण पुरुष भी अपनी कान्ताके साथ परस्पर संभोगके लिए उत्सुक हो गये। प्रेम पूर्ण कामिनियां उनके हृदयोंमें निवास करने लग गयीं। वसन्त की उन्मत्तता शील संयमादि धारण करने वाले मुनियोंको भी विचलित करनेसे नहीं चूकती। कामरूपी योधा वसन्त, क्षीण शरीरवाले मुनियोंतकके हृदयोंमें भी क्षोभ उत्पन्न कर रहा था। उसी समय राजा विश्वलोचन अपनी विशाल सेना और नगर निवासियोंको साथ लेकर क्रीड़ाके लिए उस वनस्थलीमें पहुंचा, जहांके वृक्ष लताओंसे भरपूर हो रहे थे। वन में पहुंच कर राजाको हार्दिक प्रसन्नता हुई। वनकी मनोहर सुन्दरता, वायु से चन्चल लताओंके समूह एवं चहकते हुए पक्षियोंकी समधुर ध्वनिसे ऐसा प्रतीत होता था,मानो राजा विश्वलोचनके समक्ष वायुरूपी अप्सरा नृत्य कर रही हो। वह लतारूपी अप्सरा पुष्पोंसे सजी हुई थी। वृक्षोंकी पत्तियां उसके रमणीय केशसे प्रतीत होती थी। फल स्तन थे। हंसादि पक्षियोंकी सुमधुर ध्वनि संगीतका भान करा रहे थे। वह वनस्थली सारी छटाको धारण किये हुए थी। मानव चितको चुरानेवाली लतायें पुष्प हार जैसी सुशोभित थीं। बसंतके उन्मत्त भ्रमरों की झंकार उसके गीत थे, कोयलोंकी वाणी मृदंग और शुककी ध्वनि वीणा। छिद्रयुत वासोंकी आवाज सम और तालका काम दे रही थीं। इस प्रकार सारी वनस्थली लहलहा उठी

थी, मानों अपने अतिथि महाराजका स्वागत कर रही हो।

प्रथम ही राजाने आमके वृक्ष पर बैठे हुए दो स्त्री-पुरुष पिकोंको देखा। वे परस्पर प्रेम-चुम्बन कर रहे थे। जिस स्त्री का सम्भोग सुख प्रदान करने वाला पति विदेश चला गया हो, वह भला वसंतके इस मधुमय समयमें पिककी वाणी कैसे सहन कर सकती है। राजा वनके चारों ओर घूम-घूम कर पक्षियोंके मनोहर कलरव सुनने लगे। कहीं मालतीके सुगन्धित पुष्प देखे, कहीं पुष्प वृक्षों पर भ्रमरोंका समूह क्रीड़ा करते हुए दिखाई दिया। इसी प्रकार किन्हीं स्थानों पर मत्त मयूर नृत्य करते थे। स्थान-स्थान पर बन्दरोंकी विलास-क्रीड़ा हरिणोंकी लीला और पक्षियोंके समुदाय देखे। राजाने आमके वृक्ष, अनारके वन और कहीं बिजौरे के फल देखे। स्त्री पुरुषोंकी क्रीड़ा भी देखने लायक थी। कहीं कोई अपनी प्रिया को मना रहा है। कहीं स्त्री मान द्वारा पतिको चिढ़ा रही है। कोई प्रेम में मत्त थी और कोई स्तन दिखाकर प्रेम प्रकट कर रही थी। किन्हीं स्थलों पर हरी घास थी, कहीं पृथ्वी जलसे भर रही थी और कहीं पर धानके वृक्ष फलोंसे झुक रहे थे। इन सारी शोभाको राजाने बड़े चावसे देखा। पश्चात् वह अंगूरकी लताओंके मंडपमें पहुंचे और वहीं पंचेन्द्रियोंकी तृप्ति करने वाले सरस कामोपभोग एवं लीला पूर्वक ऐहिक स्पर्शसे रानी को प्रसन्न करने लगे। इस प्रकार राजा कामोपभोगसे प्रसन्न होकर रानीके साथ जल क्रीड़ाके लिए गये। जल क्रीड़ा करते समय सरोवरकी छटा देखने लायक थी। शरीरकी केसर धूल

धुल कर सरोवरके जलको पीला करने लगी और पुष्पोंकी सुगन्धसे वह सरोवर सुगन्धित हो गया। जब उनकी जल क्रीड़ा समाप्त हो गयी तो वे बड़े गाजे वाजे और स्त्रियोंके मनोहर गीतके साथ अपने राजमहलको लौटे।

संध्या हो चली। जिन कामी जनोंके हृदयको रमणियोंने अपना लिया था, मानों उन पर दया करके ही सूर्य अस्त होने लगा। समस्त आकाशमें लाली दौड़ गयी। चारों ओरसे पक्षियोंके कोलाहल सुनाई देने लगे। आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा का उदय हुआ। कुमुदिनी प्रफुल्लित हुई और संभोग करने वाली स्त्रियां अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं। राजा भी महलमें आकर पुनः अपनी रानीके साथ आसक्त हो गये। सत्य ही है, स्त्रियां स्वभावसे ही मोहक होती हैं। साथ ही यदि रूपवती हों तो फिर पूछना ही क्या? ऐसेही सुखसे समय व्यतीत करते हुए कितने दिन व्यतीत हो गये, राजाको तनिक भी खबर नहीं थी। वस्तुतः सुखका एक मास एक दिवसकी तरह बीत जाता है और दुःखका एक दिवस मासकी तरह प्रतीत होता है।

एक दिनकी बात है। रानी प्रसन्नचित्त होकर चामरी और रंगिका नामकी दो दासियोंके साथ अपने महलके झरोखे पर खड़ी हुई बाहरी दृश्य देखरही थी। एक नाटक देखकर उसके हृदयमें चंचलता उत्पन्न हो गयी। वह नाटक आनन्द वर्द्धक, मनोहर और रसपूर्ण था। उसमें अनेक पात्र अपना अभिनय संपन्न कर रहे थे। भेरी, मृदंग ताल, बीणा, वंशी, डमरू झांझ आदि

अनेक प्रकारके बाजे बज रहे थे। वहां पुरुषोंकी भीड़ लगी हुई थी। वह नाटक ताल और लयों से सुन्दर था। उसमें स्त्री वेशधारी पुरुषोंके नृत्य हो रहे थे। खेल तथा दृश्यके साथ पुरुषोंके अंग विक्षेप और स्त्रियोंके गान हो रहे थे। अर्थात् वह नाटक सबके मनको प्रफुल्लित कर रहा था। ऐसे मनोमुग्धकारी अभिनयको देखकर रानी चंचल हो उठी। ठीक ही है, अपूर्व नाटकको देखकर कौन ऐसा हृदय होगा, जिसमें विकार न उत्पन्न होता हो। रानी सोचने लगी—इस राज्योपभोगसे मुझे क्या लाभ होता है। मैं एक अपराधीकी भांति बन्दीखानेमें पड़ी हुई हूं। वे स्त्रियां ही संसारमे सुखी हैं जो स्वतंत्रता पूर्वक जहां कहीं भी विचरण कर सकती हैं। अवश्य यह पूर्व-भवके पाप कर्मोंके उदयका ही फल है कि मुझे उस अपूर्व सुखसे वंचित होना पड़ा है। अतएव अबसे मैं भी उन्हींकी तरह स्वतंत्रता पूर्वक विचरण करनेका प्रयत्न करूंगी और वह भी सदाके लिये। इस संबन्धमें लज्जा करना ठीक नहीं।

रानीकी चिन्ता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। किन्तु अपने मनो-रथोंको पूर्ण करनेके लिये उसे कोई मार्ग नहीं सूझ पड़ा। पर एक उपाय उसे सूझ पड़ा। उसने अपनी चतुर दासियोंसे कहा, दासियो! स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण करना मानव जन्मको सार्थक करता है एवं कामजन्य भोगादिको प्राप्त करानेवाला होता है। अतएव आओ हम लोग स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने फिरनेके उद्देश्यसे बाहर निकल चलें। दासियोंने रानीके प्रस्ताव का समर्थन किया। उन्होंने कहा—आपके विचार बहुत ही

उत्तम हैं। वस्तुतः मानवजन्म सार्थक करनेके लिये इससे बढ़कर और दूसरा मार्ग नहीं है। इसके पश्चात् काम-बाणसे दग्ध अत्यन्त विह्वल, विलासकी कामना करने वाली, अपने कुलाचार से रहित वह रानी पूर्वार्जित पापोंके उदयसे दासियोंको लेकर घरसे बाहर निकलनेका प्रयत्न करने लगी। वस्तुतः असत्य भाषण करना, दुर्बुद्धि होना कुटिल होना, और कपटाचार करना ये स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष होते हैं। इन्हीं कारणोंसे उसने रूई भरकर एक स्त्रीका पुतला बनाया और उसे वस्त्राभूषणोंसे खूब सजाया। रानीने उस पुतलेकी कमरमें करधनी, पैरोंमें नूपुर, सरमें तिलक लगाये तथा उसे चन्दनसे लिप्त कर फूलोंसे खूब सजाया। उसके स्तनोंपर कंचुकी, मुखपर पत्तन तथा मोतियोंकी नथ पहना दी। रानी एक बार उस बने हुए पुतलेको देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। वह ठीक रानीकी आकृतिका ही बन गया था। पश्चात् रानीने उस पुतलेको चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्योंसे लिप्त और मोती आदि अनेक रत्नोंसे सुशोभितकर पलङ्गपर सुला दिया। उसने द्वारपाल आदि सब सेवकोंको धन देकर अपने वशमेंकरलिया था। उसके पूर्वभवके पापोंके उदयसेही उसकी ऐसी विचित्र बुद्धि होगयी। वह किसी देवीकी पूजाके बहाने अपनी दो दासियोंको साथ लेकर घरसे बाहर निकली। उन तीनोंने अपने वस्त्राभूषण आदि राज्य चिन्होंका सर्वथा परित्याग कर दिया एवं गेरुआ वस्त्र पहनकर योगिनी वेशमें हो गयीं। वे राजमहलसे चलकर सीधे वनमें पहुंची। उनका राजभवनमें मिलनेवाला सुन्दर भोजन तो छूट ही गया

था, वे अपनी भूखकी ज्वाला मिटानेके लिये वृक्षोंके फल खाने लगीं। यहां विचारणीय है कि कहां तो रानीका पद और कहां आज योगिनीका वेष। केवल पापकर्मोंके उदयसे ही मनुष्यको अशुभ कर्मोंकी प्राप्ति होती हैं।

दूसरे दिन कामसे पीड़ित राजा मणियोंसे सजाये हुए रानीके सुन्दर महलमें जाने लगा उसने अन्यान्य परिजन वर्गको महलके बाहर ही छोड़ दिया और स्वयं सुगन्धित पदार्थोंसे विलेपित महलके अन्दर जापहुंचा। उस दिन रानीके उस सुन्दर पलंगको देख राजाको अपूर्व प्रसन्नता हुई। उसके रोम रोम पुलकित हो उठे और नेत्र तथा मुंह प्रफुल्लित हो रहे थे। उसने मन ही मन विचार किया कि, मैं इन्द्र हूं और मेरी रानी साक्षात् शक्ति है अर्थात् इन्द्राणी है। आज यह राजभवन इन्द्र भवनसा शोभायमान हो रहा है। यह सुन्दर पलंग शक्तिकी सज्जा है। इस प्रकार राजाका कोमल कामीहृदय आनन्द सागरमें गोते लगाने लगा। फिर भी उसने विचार किया कि आज रानी मेरा सत्कार क्यों नहीं करती है। इसका कारण राजाकी समझमें नहीं आ रहा था। उसने सोचा—संभवतः उसे कोई रोग अथवा मानसिक कष्ट तो नहीं हो गया है, अथवा मुझसे नाराज तो नहीं है। ऐसी ही विकट चिन्तासे व्याकुल होकर राजा कहने लगा—रानी आज न उठनेका कारण शीघ्रतासे बतला। इतना कहकर वह पलंगपर बैठ गया और अपने कोमल करोंसे उसने रानीका स्पर्श किया। किन्तु उस कृत्रिम अचेतन विशालाक्षीके कुछ भी उत्तर न देनेपर राजा

समझ गया कि यह कृत्रिम रानी है, वस्तुतः महलमें रानी नहीं है। रतिके समान सुन्दरी त्रिशालाक्षीका किसी अपर पापीने हरण कर लिया। राजाकी आतुरता और बढ़ गयी। वह मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़ा। तत्काल ही सेवकोंने शीतोपचार किया, जिससे राजाकी मूर्छा दूर हुई। राजाका हृदय प्रिय रानीके वियोगमें व्याकुल हो रहा था। वह बच्चोंकी तरह विलाप करने लगा। वह कहने लगा – हंस जैसी चाल चलनेवाली, मृगनैनी तू शीघ्रता पूर्वक बतला कहां है। हे गुणों का गौरव बढ़ानेवाली, मेरे हृदयरूपी धनको अपहरण करनेवाली, हे विलासिनी तू कहाँ चली गई।

हे चन्द्र-बदनी सुन्दरी! तेरी सेवा करनेवाली दासियां कहां गयीं। साथ ही मेरे प्रति तेरा प्रेम कहां चला गया। संसार के माया मोह मुझे सुन्दर नहीं जान पड़ते। मेरी समझमें नहीं आता कि, जब इस महलमें कोई नहीं आसकता तो किस प्रकार तू अपहरित की गयी अथवा तू अपने आपही कहीं चली गयी। क्या तू उस प्रकारसे तो नष्ट नहीं हुई, जिस प्रकार बुरी संगतिमें पड़कर सज्जन पुरुष भी नष्ट होजाते हैं। स्त्रियां अन्य पुरुषको अपने यहाँ बुलाती हैं और किसी अन्यसे प्रेम करती हैं एवं नियत समय किसी अन्य को बतला कर अन्यके साथ क्रीड़ा करती हैं। ये सब काम एक साथही सम्पन्न होते हैं। जैसा उनका बाहरी स्वरूप होता है वैसा भीतरी नहीं होता। इसलिए स्त्रियों के चरित्रका भला कौन वर्णन कर सकता है। शोकसे सन्तप्त राजा का हृदय व्याकुल होकर

विचार करने लगा। किसो अभिप्राय, वक्रदृष्टि, बुरी संगति तथा एकांत की बात चीतसे स्त्रियां नष्ट होजाती हैं। राजाने सोचा--मैंने तो किसी समय भी रानीको अप्रसन्न नहीं किया। उसे पटरानी के पदपर बिठाया तथा समस्त रनवास में वह पूज्य समझी जाती थी। फिर उसके नष्ट होनेका कोई कारण नहीं दीखता। जिस स्त्रीके सद्गुणी और प्रजापालन में तत्पर १० वर्षका पुत्र हो, वह सुन्दरी उसे त्याग कर कैसे चली गयी, यह समझमें नहीं आता। अवश्य ही वह अपनी नीच दासियों को संगतिमें पड़कर भ्रष्ट हुई है। जब खेतका मेड़ही उस खेतको खाने लगे,तब भला उस खेतकी रक्षाही कैसे की जा सकती हैं। यह निश्चित हैं कि कुसंगति में पड़कर सज्जन भी नष्ट हुए बिना नहीं रह सकते। इस भांति अनेक मानसिक चिन्ताओं से दुखी होकर राजाने राज्य-कार्य का सारा प्रबन्ध त्याग दिया। उसे राज्य-शासन से एक प्रकारकी विरक्ति सी होगयी। राजाकी इस चिन्तासे अन्य सामन्त राजा और प्रजा भी दुखी थी। अनेक राजाओंने समझाया भी पर क्षणभरके लिए भी राजाका शोक कम नहीं हुआ। बात यह थी कि रानी उसके मनको हर ले गयी थी। राजाका वियोग दु:ख इतना बढ गया कि अन्तमें उसने उसका प्राण लेकर ही छोड़ा। यह ठीक ही है, क्योंकि कौन ऐसा पुरुष है जिसे स्त्रीके वियोगमें मरना नहीं पड़ता हो।

राजाकी मृत्यु हो जानेके पश्चात उस ऐश्वर्यशाली राज्य शासनका भार उसके पुत्रको सौंपा गया। समस्त मंत्रियों

और सामन्त राजाओंने मिल कर राज्य-तिलक की विधि सम्पन्न करायी।

उस राजाके मृतजीवको अनेकवार संसारका चक्कर काटना पड़ा। इसी जन्म-मृत्युके चक्करमें वह एकवार विशाल हाथी हुआ। वह हाथी अत्यन्त तेजस्वी और बड़ा ही मदोन्मत्त था। उसकी विकराल आंखें लाल रंगकी थीं। वह इतना उद्दण्ड था कि वन में स्त्री-पुरुषोंकी हत्या कर डालता था। उस हाथीने इस भवमें महापापका उपार्जन किया। कारण यह कि, प्राणियोंका घात करना जन्म-जन्ममें दुःखदायी हुआ करता है। किन्तु उस हाथीके पुण्य-कर्मके उदयसे उस वनमें किसी मुनिराजका आगमन होगया। वे मुनि महाराज अवधिज्ञानी और सत्पुरुषोंके लिए उत्तम धर्मोपदेशक थे। उनके द्वारा हाथीको धर्मोपदेश मिला। उसने बड़ी प्रसन्नतासे श्रावकके व्रत ग्रहण कर लिए। इसके बाद उस हाथीने फल फूलादि किसी भी सचित पदार्थोंका ग्रहण नहीं किया। अन्तमें उसने चारों प्रकारके आहार त्याग कर समाधिमरण धारण कर लिया। मृत्युके समय उसने भगवान अर्हंतदेवका ध्यान किया; जिससे वह मर कर प्रथम स्वर्ग में देव हुआ।

हे राजन! वहांसे चयकर तुम्हें राजाका उत्तम शरीर प्राप्त हुआ है। आगे तुझे भी मुक्तिका प्राप्ति होगी। अब उन तीनों स्त्रियोंकी कथा कहता हूं। ध्यान देकर सुन—

वे तीनों बड़ी प्रसन्नतासे स्वतंन्त्रता पूर्वक वनमें विचरण करने लगीं। इस प्रकार भ्रमण करते हुए वे अवन्ती देशमें जा

पहुंची। उनके साथ कंथा, खडाम, दण्ड और अन्य बहुत सी योगिनियां थी। उन्हें भिक्षा मांग मांग कर अपना पेट पालना पड़ता था। यह भी सत्य ही हैं कि 'बुभुक्षित: किं न करोति पापम्' भूखे मनुष्य कौनसा पाप नहीं कर डालते अर्थात् भूखकी ज्वाला शान्त करनेके लिए सब कुछ करना पड़ता है। वे सदा प्रमाद करनेवाली वस्तुओं का सेवन करती थीं। मद्य, मांस आदि उनके दैनिक आहार थे। इसके अतिरिक्त वे मधु एवं अनेक जीवोंसे भरे हुए उदुम्बरों तकका भक्षण करती थीं। उनकी कामवासना इतनी प्रबल हो उठी थी कि ऊंच-नीचका कुछ भी विचार न कर जो जहां मिलता, उसीके साथ संभोग कर लेती थीं। यही नहीं वे सबके सामने ही ऐसी रागिनियां गाया करती थीं, जिससे योगियोंको भी काम उत्पन्न हुए विना नहीं रहता था। वे यह भी कहा करती थीं, कि हमे योग धारण किये १०० वर्षसे भी अधिक हो गये हैं।

सौभाग्यवश नगरमें एक दिन धर्माचार्य नामके मुनिका आगमन हुआ। वे केवल आहारके लिए आये थे। मुनिमहाराज मौन धारण किये हुए, पर्वतके समान अचल और इन्द्रियोंको दमन करनेवाले थे। उन्होंने अपने मनको वशमें कर लिया था और शरीर से भी ममत्व का नाश होगया था। कठिन तपश्चर्या से उनके शरीर की क्षीणता बढ़ चली थी। वे शील संयम को धारण करने और चारित्र-पालनमें अत्यन्त तत्पर रहा करते थे। उन्होंने समस्त कषाओंका सर्वनाश कर दिया था। वे अपने धर्मोपदेश द्वारा अमृतकी वारि बहाया करते थे। वे क्षमाके अ-

वतार और संसारी जीवोंपर दयाकी दृष्टि रखनेवाले थे। मुनिराज कठिन दोपहरीमें भी योग धारण किया करते थे। वे चोर और लम्पटों के पाप रूपी वृक्षको काट डालनेके लिए कुठारके समान तीक्ष्ण थे। उन्होंने समस्त परिग्रहोंका सर्वथा परित्याग कर दिया था। उस समय वे इर्या पथकी बुद्धिसे गमन कर रहे थे। उन्हें देखकर वे तीनों स्त्रियां क्रोधसे लाल होगयीं। उन्होंने मुनिको संबोधित करते हुए कहा—अरे नंगे फिरनेवाले! तू मानमोहादि शुभकर्मों! से सर्वथा रहित है। न जाने हमारे किस पाप कर्मके उदय होनेसे तेरा साक्षात् हुआ। इस समय हम उज्जैनीके महाराजाके यहां धन मांगने के उद्देश्यसे जा रही थीं। वह राजा अत्यन्त धर्मात्मा और शत्रुओंको परास्त करनेवाला है। तूने अपना नग्नरूप दिखलाकर अपशकुन कर दिया। तू सर्वथा बुरा है और जो तेरा दर्शन या स्तुति करता है वह भी बुरा है अर्थात् पापी है। इसलिये हमारे कार्यों की सिद्धि होना संभव नहीं। इस समय तो अभी दिन बाकी है और सभी वस्तुएं अच्छी तरहसे दिखलाई पड़ती हैं। किन्तु रात्रि होनेपर हम लोग मार्गमें अपशकुन करनेका फल तुझे चखावेंगी। फिर भी उन स्त्रियोंके कठोर वचनोंसे मुनिराजको जरा भी क्रोध नहीं हुआ, कारण वे दयालु स्वभावके थे। मुनिराजने इस घटनापर दृष्टिपात न कर वनमें जाकर योग धारण कर लिया। वस्तुतः जलमें अग्निका वश नहीं चल सकता, ठीक उसी प्रकार योगियोंके पवित्र हृदयको क्रोधरूपी अग्नि नहीं जला सकती। रात्रि होनेपर वे तीनों नीच स्त्रियां मुनिके समीप

पहुंची और क्रोधित हो भाँति भाँतिके उपद्रव करने लगीं। एकने रोना प्रारम्भ किया और दूसरी उनसे लिपटगयी। इसके अतिरिक्त तीसरी घुआंकर मुनिराजको अनेक कष्ट देने लगी। सत्य है कामसे पीड़ित व्यक्ति जितना अनर्थ करे वह थोड़ा है।

किन्तु इतने उपद्रवके होते हुए भी मुनिका स्थिरमन चलायमान नहीं हुआ। क्या प्रलय वायुके चलने पर महान मेरु पवर्त कभी चलायमान होता है? इसके बाद वे दुष्ट स्त्रियां नंगी होकर मुनिके समक्ष नृत्य करने लगीं। वे कामसे संतप्त स्त्रियां मुनिसे कहने लगीं—स्वतंत्र विचरण करने वालोंके लिए परलोकमें भी स्वतंत्रता प्राप्त होती है और इहलोकमें भोगमें लिप्त रहनेसे भोगोंकी सदैव प्राप्ति होती रहती है। किन्तु नग्न रहनेसे उसे नंगापन ही उपलब्ध होता है। अतएव तुम्हें चाहिए कि, हमारी इच्छाओंकी पूर्ति करो। इस भोगकी लालसा चक्रवर्ती, देवेन्द्र और नागेन्द्रों तकने की है। संसारका सारा सुख स्त्रियोंकी प्राप्तिमें होता है। कारण वे इन्द्रियजन्य सुख प्रदान करने वाली होती हैं। इसलिए जो व्यक्ति स्त्री-सुख से वंचित है, उसका जन्म व्यर्थ है। सत्य मानों, यदि तूने हमारी इच्छा की पूर्ति नहीं की तो तेरा यह शरीर चण्डीके समक्ष रख दिया जायगा। इस प्रकार कुवाक्य कहती हुई उन स्त्रियोंने विकार रहित मुनिवरके शरीरको उठाकर चण्डीके समक्ष रख दिया। इसके पश्चात् उन सबोंने मुनिराज पर घोर उपसर्ग किये। पत्थर, लकड़ी मुक्का, लात, जूते आदिसे उनकी ताड़नाकी और अन्तमें बांध दिया। उस समय मुनिराजने

वारह अनुप्रेक्षाओंका चिन्तवन किया। अनुप्रेक्षाही प्राणीको भव-सागरसे पार उतारने वाली है। वे विचार करने लगे कि, मानव शरीर क्षणभंगुर है, यह जीवन जलका बुदबुदा है और लक्ष्मी विद्युतकी भांति चंचल है। जब भरत आदि चक्रवर्ती तकका जीवन नष्ट हो गया तो इस जीवनकी क्या गिनती है? विना अरहंत देवकी शरण गहे इस जीवका निस्तार नहीं। इसलिए हे जीव, तू सदा अरहंत देवका स्मरण किया कर। तुम्हारी यात्रा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव, ये पांचों संसारमें हो चुके हैं और अब भी तू त्रस-स्थावर योनियोंमें भ्रमण कर रहा है। पर तुम्हारी यह असावधानी ठीक नहीं है। अब तुझे रत्नत्रयकी प्राप्तिमें अपना चित्त लगाना चाहिए; क्योंकि संसार का विनाश उसी रत्नत्रयकी प्राप्तिसे ही होता है। आत्मन! तू अकेला ही कर्मोंका कर्ता और सुख-दुखका भोक्ता है। तेरे सब भाई-बन्धु तुझसे भिन्न हैं। तुझे अकेला जन्म ग्रहण करना पड़ता है और मरना पड़ता है। अतएव कर्म-कलंकसे रहित सिद्ध परमेष्ठीके चरणोंका निरंतर ध्यान कर। इस जीवकी कर्म-क्रियाओं और इन्द्रियजन्य विषयोंमें भी विभिन्नता है, फिर कुटुम्बी और भाई बन्धु तो सर्वथा अलग हैं ही। आत्मन् तू लौकिक वस्तुओंसे सर्वथा भिन्न है। संसारके सभी लौकिक ऐश्वर्य जड़वत हैं, किन्तु तू ज्ञान दर्शन और कर्मरहित शुद्ध जीव है। इसलिए आत्माका ध्यान करना चाहिए। यह देह रक्त, मांस, रुधिर हड्डी, विष्ठा, मूत्र, चर्म, वीर्य आदि महा अप पदार्थोंसे निर्मित है, किन्तु भगवान पंच परमेष्ठी इन दोषोंसे सर्वथा

अलग हैं। अतः तू उन्हींकी आराधना कर। जैसे नावमें छिद्र होजाने पर उसमें पानी भर जाता है, ठीक वैसे ही मिथ्यात्व अविरत कषाय और योगोंसे जीवोंके कर्मोंका आस्रव होता रहता हैं और नावकी तरह यह भी संसार-सागरमें डूब जाता है। अतएव कर्मोंके आस्रवसे सर्वथा मुक्त सिद्ध परमेष्ठीका स्मरण किया कर। मिथ्यात्व, अविरत, आदिक त्याग कर देनेसे एवं ध्यान चारित्र आदि धारण कर लेनेसे आनेवाले समस्त कर्म रुक जाते हैं। उसे संवर कहा जाता है। उसी संवरके होने पर जीव मोक्षका अधिकारी होता है। अतः हे जीव! तुझे अपने शरीरका मोह त्यागकर शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्माका स्मरण करना चाहिए। इस शरीर पर मोहित होना व्यर्थ हैं। तप और ध्यानसे जिन पूर्व-कर्मोंका विनाश करना है, उसे निर्जरा कहते हैं। वह दो प्रकारकी होती हैं—एक भाव निर्जरा और दूसरी द्रव्य निर्जरा। ये दोनों निर्जरायें सविपाक और अविपाकके भेदसे दो प्रकारकी होती हैं। अतएव मोक्ष प्राप्तिके लिए जीवको सदा कर्मोंकी निर्जरा करते रहना चाहिए। यह लोक अकृत्रिम है। इसका निर्माण कर्ता कोई नहीं है। यह चौदश रज्जू ऊंचा और तीन सौ तैतालिस रज्जू घनाकार है। अतः इस लोकमें जीवका भ्रमण करते रहना सर्वथा व्यर्थ है। कारण इस संसारमें भव्य होना महान कठिन होता है, फिर मनुष्य, आर्य क्षेत्रमें जन्म, योग्य कालमें उत्पत्ति, योग्य कुल, अच्छी आयु आदिकी प्राप्ति सर्वथा दुर्लभ है और इनकी प्राप्ति होनेपर भी रत्नत्रयकी प्राप्ति और भो

कठिन है। इसलिए हे जीव! तू इच्छा पूरक चिन्तामणिके समान सुख प्रदान करने वाले रत्नत्रयको पाकर क्यों समयको नष्ट कर रहा है! अपना कल्याण साधन कर। अहिंसा रूप यह धर्म एक प्रकारका हैं। मुनि श्रावक भेदसे दो प्रकार,क्षमा मार्दव आदिसे दश प्रकार, पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति भेदसे तेरह प्रकार एवं और व्रतोंके भेदसे अनेक प्रकारका है। धर्मकी कृपा से ही आत्माके परिणाम पवित्र होते हैं और उसी पवित्रतासे आत्मा प्रबुद्ध होता है एवं प्रबुद्ध होने पर वह रत्नत्रयमें स्थिर होनेमें समर्थ होता हैं। स्त्रियों द्वारा सताये हुए वे मुनिराज इस प्रकार की बारह अनुप्रेक्षाओं पर विचार करने लगे। उन्हें स्त्रियों के उपद्रवका कुछ भी ज्ञान नहीं था। प्रातःकाल होते ही वे स्त्रियाँ आने-जाने वाले लोगोंके डरसे भाग गयीं। किन्तु कर्मोंको विनष्ट करने वाले वे मुनिराज उसी प्रकार निश्चल रहे। उनके आत्मध्यानमें किसी प्रकारका विक्षेप नहीं हुआ। इसके बाद वहां अनेक श्रावक एकत्रित हो गये। उन्होंने मन वचन कायसे शुद्धतापूर्वक चन्दनादि अष्ट द्रव्योंसे मुनिराजकी पूजा की। उनका शरीर तो क्षीण था ही, उस पर रातके उपद्रवसे उनके सर्वाङ्गमें घाव हो रहे थे। उन्होंने मौन धारण कर लिया था। इन सब कारणोंको देख कर उन सत्पुरुषोंने रात्रिका काण्ड समझ लिया। स्त्रियोंके कटाक्ष भी सत्पुरुषोंको चलायमान नहीं कर सकते। क्या प्रलयकी वायु मेरुको उड़ा सकती है, संभव नहीं! यद्यपि इस संसारमें शेरको मारने वाले और हाथियोंको बांधने

वाले बहुत मिलेंगे, पर ऐसे बहुत कम मिलेंगे जिनका चित्त स्त्रियोंमें न रमा हो। उन दुष्ट स्त्रियोंने मुनिराज पर घोर उपसर्ग किये थे, इसलिए उन्हें महापापका बन्ध हुआ। वे पाप कर्मके उदयसे कुष्ट रोगसे ग्रसित हुईं। उन तीनोंकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। वे सदा पाप कर्ममें रत रहती थीं और लोग सदा उनकी निन्दा किया करते थे। वे तीनों महादुखी रहती थीं। आयुकी समाप्ति होनेपर रौद्रध्यानसे उनकी मृत्यु हुई। इन सब पाप कर्मोंके उदयसे वे पांचवें नरकमें गयीं। उन्हें पांचों प्रकारके दुःख सहन करने पड़े। उनकी कृष्ण लेश्या थी। उन्हें बन्धन छेदन, कदर्थन, पीड़न, तापन, ताड़न आदिके दुःख सहन करने पड़ते थे। उष्ण वायु तथा सर्द वायु सदा उनको उत्पीड़ित किया करती थीं। उन नारकीयोंका अवधिज्ञान दो कोस तकका था, शरीरकी ऊंचाई एक सौ पच्चीस हाथ और आयु सत्रह सागरकी थी। वे सबकी सब नपुन्सक थी। उनका शरीर भयानक और वे स्वभावसे भी भयानक थे। उनमें धर्मका तो नाम ही नहीं था। वे सबसे ईर्षा करते और सदा मार-मारकी रट लगाया करते थी। आयुकी समाप्ति पर वे नारकी स्त्रियां वहांसे बाहर हुईं और परस्पर विरोधी शरीरोंमें उत्पन्न हुईं। सबोंने एक साथही कर्मोंका बन्ध किया था,अतः वे बिल्ली सूकरी कुतिया और मुर्गी की योनियोंमें आयीं। वे हर प्रकारका कष्ट सहती और जीवोंकी हिंसा किया करती थीं। परस्पर लड़ना और उच्छिष्ट भोजनके द्वारा उनका जीवन निर्वाह होता था। इसके अतिरिक्त जहां भी जाती, वहांसे दुत्कार दी जाती

थीं। सत्य है रौद्रध्यानसे जीव नर्कमें जाते हैं; आर्तध्यानसे तिर्यंच गति होती है और धर्मध्यानके द्वारा मनुष्यकी गति एवं देवगति होती है तथा शुक्ल ध्यानसे केवल ज्ञानके द्वारा उत्कृष्ट मोक्ष प्राप्त होता है। जो लोग शान्ति प्रिय मुनिराज पर क्रोध करते हैं, उन्हें अवश्य नरक मिलता है। और जो उनपर उपसर्ग करते हैं,उनकी तो वात ही क्या। अतएव विद्वान लोगों को चाहिये कि, शास्त्र एवं निग्रंथ गुरुकी स्वप्नमें भी निन्दा न करें। कारण इनकी निन्दा करने वालोंको नर्ककी प्राप्ति होती है और स्तुति करने वालोंको स्वर्ग की। अतः हे राजन्! वे तीनों पशु जीवधारी स्त्रियां अत्यन्त कष्टसे मरीं। ठीक ही है, पाप कर्मोंके उदयसे जीवको प्रत्येक भवमें दुःख झेलने पड़ते हैं। मृत्युके पश्चात् उनका जन्म प्रधान धर्म स्थान अवन्ती देशके समीप अत्यन्त नीच लोगोंसे बसे हुए एक कुटुम्बीके घर कन्याओंके रूपमें हुआ। उस कुटुम्बीके लोग मुर्गियां पाला करते थे। इन कन्याओंके गर्भमें आते ही उनके धन-जनका नाश हो गया। घरके सब लोग मर गये। केवल एक पिता बचा था। उन कन्याओंमें एक कानी दूसरी लंगड़ी और तीसरी अत्यन्त कुरूपा काले रंगकी थी। मुनिके घोर उपसर्गके पापसे उनका जीवन अशान्त था। देह सूखी हुई, उनकी आंखें पीले रंगकी, नाक टेढ़ी और पेट वढ़ा हुआ था। दांतोंकी पंक्तियां दूर-दूर, पैर मोटे और शरीर भी आवश्यकतासे अधिक मोटा था। उनके स्तन विषम, हाथ छोटे और होठ लम्बे थे। उनके वाल पीले

रंगके, आवाज काक जैसी और उनका हृदय प्रेमसे शून्य था। उनकी भौंहें मिली हुई थीं और वे सदा असत्य भाषण करती थीं। क्रोधसे उनका शरीर जलता रहता था। वे विचारहीन और अनेक रोगोंसे पीड़ित थीं। वे नगरके जिस कोनेसे जाती, वहां दुर्गन्ध फैल जाती थी। सत्यही है, पापकर्मोंके उदयसे संसार में क्या नहीं होता। उच्छिष्ट भोजनोंसे उनका जीवन निर्वाह होता था, चिथड़ोंसे शरीर ढकती थीं और दुःखसे सदा पीड़ित रहती थीं। क्रमसे वे तीनों कुरूप कन्याएं जवान हुईं। उनके पूर्व कर्मोंके उदयसे उन्हीं दिनों देशमें दुर्भिक्ष पड़ा। वे तीनों पेटकी ज्वालासे अशान्त होकर व्यभिचार करानेके उद्देश्यसे विदेशको चलीं। मार्गमें भी उनकी लड़ाई जारी थी। उनके साथ न तो खानेका सामान था और न उनमें लज्जा हया थी। यह पाप कर्मका ही प्रभाव है। जब वह फल देने लगता है तो धन-धान्य रूप, बुद्धि सबके सब नष्ट होजाते हैं। वे कन्यायें अनेक नगरोंमें भ्रमण करती हुई घटना वशात इस पुष्पपुरमें आगयी हैं। इस वनमें अनेक मुनियोंको देखकर धनकी इच्छासे यहां उपस्थित हुई हैं, फिर भी बड़ी प्रसन्नताके साथ इन सबोंने मुनियोंको नमस्कार किया है। राजन! यह संसार अनादि और अनन्त है। जीवका कर्म है, जन्म और मृत्यु प्राप्त करना। इसमें भ्रमण करते हुए कर्मोंके उदयसे उच्च और निकृष्ट भव प्राप्त होते रहते हैं। कुछ दुःख भोगते हैं और कुछ सुख। यहांतक कि पुण्योदयसे स्वर्ग और मोक्ष तकके सुख उपलब्ध होते रहते हैं। वे तीनों कुरूपा कन्यायें अपने पूर्वभवकी,

बातें सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई, जिस प्रकार बादलोंकी गर्जना सुनकर मोर प्रसन्न होते हैं।

मुनिराजने पुनः कहना आरम्भ किया—राजन यह श्रेष्ठ धर्म कल्पवृक्षके तुल्य है। सम्यग्दर्शन इसकी मोटी जड़ और भगवान जिनेन्द्रदेव इसकी मोटी रीढ़ हैं। श्रेष्ठ दान इस धर्म की शाखायें हैं, अहिंसादि व्रत पत्ते और क्षमादिक गुण इसके कोमल और नवीन पत्ते हैं। इन्द्रादि और चक्रवर्तीकी विभूतियां इसके पुष्प हैं। यह वृक्ष श्रद्धारूपी बादलोंकी बारिसे सिंचित किया जाता है। और मुनि समुदाय रूपी पक्षीगण इसकी सेवामें संलग्न रहते हैं। अतएव यह धर्म रूपी कल्पवृक्ष तुम्हें मोक्ष सुख प्रदान करें।

अथ तीसरा अधिकार

वे तीनों कन्यायें संसारसे भयभीत हो उठीं। उन सबों ने बड़ी श्रद्धा और आदरभावसे मुनिराजको नमस्कार किया और उनकी प्राथना करने लगीं: -

मुनिराज! मुनिके उपसर्गसे ही हमें मातृ-पितृ विहीन होना पड़ा है और हमने भव-भवमें अनेक कष्ट भोगे हैं। स्वामिन! आप भवसंसारमें डूबने उतराने वालोंके लिए जहाजके तुल्य हैं। हे संसारी जीवोंके परम सहायक! पूर्वभवमें हमने जो पाप किये हैं, उनके नाश होनेका मार्ग बताइये। जिस वृतरूपी औषधिसे यह पापरूपी विष नष्ट होता है, उसे आज ही बताइये। उनकी करुणवाणी सुनकर मुनिराजका कोमल हृदय दयार्द्र हो गया। वे कहने लगे—पुत्रियो! तुम्हें विघ्नविधान व्रत धारण करना चाहिए। यह व्रत कर्म-रूपी शत्रुओंका विनाशक और संसार सागरसे पार उतारने वाला है। इसके पालन करनेसे समस्त भवोंमें उत्पन्न हुए पाप क्षण भरमें नष्ट हो जाते हैं। इसके द्वारा इन्द्र चक्रवर्ती की विभूतियां तो क्या मोक्ष तकके अपूर्व सुख प्राप्त होते हैं। मुनिराजकी बातें सुनकर वे कन्याएं कहने लगीं-मुनिराज! इस वृतके पालनके लिए कौन-कौन से नियम हैं और प्रारम्भमें किसने इस वृतका पालन किया जिसे सुनिश्चित फलकी प्राप्ति हुई। प्रत्युत्तरमें मुनिराजने कहा-पुत्रियों, इस वृतका

नियम सुनो। सुनने मात्रसे ही मनुष्यको उत्तम सुख प्राप्त होता है। मोक्ष सुख प्राप्त करनेवाले भव्यलोगोंको यह व्रत भाद्रपद और चैतके महीनोंमें शुक्लपक्ष के अन्तिम दिनोंमें करना चाहिए। उस दिन शुद्ध जलसे स्नान कर धुले हुए शुद्ध वस्त्र पहनना चाहिए और मुनिराज के समीप जाकर तीन दिनके लिए शीलव्रत (ब्रह्मचर्य) धारण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त मन वचन कायकी शुद्धता पूर्वक अष्टोपवास करना चाहिए। क्योंकि प्रोपध पूर्वक उपवास ही मोक्षफल को देनेवाला हैं। इससे समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं। यदि इसप्रकार उपवास करनेकी शक्ति न हो तो एकान्तर अर्थात् एकदिन बीचका छोड़ कर उपवास करना चाहिए। इस व्रतको जैन विद्वानोंने बड़ी महत्ता देकर स्वर्ग फल देनेवाला बतलाया है। यदि ऐसी भी शक्ति न हो तो शक्ति अनुसार ही करे। इन तीनों दिन जैन-मंदिरमें ही शयन करे। साथ ही वर्द्धमान स्वामीका प्रतिबिम्ब स्थापित कर इक्षुरस, दूध, दही, घी और जलसे पूर्ण कुंभोंसे अभिषेक करना चाहिए। इसके बाद मन वचन और कायको स्थिरकर चन्दनादि अष्ट द्रव्योंसे भगवानकी पूजा करे। पुनः सर्वज्ञदेवके मुंहसे उत्पन्न सरस्वती देवीकी पूजा तथा मुनिराजके चरणोंकी सेवा करे। कारण गुरु-पूजा ही पाप रूपी वृक्षोंको काटनेके लिए कुठार स्वरूप है। वह संसार समुद्र में पड़े हुए जीवोंको पार कर देनेके लिए नौकाके तुल्य है। उस समय मनको एकाग्रकर भक्तिके साथ तीनों समय सामायिक करना चाहिए। ये सामायिक आनेवाले कर्मोंको रोकनेमें

समर्थ होते हैं। शुद्ध लवंग पुष्पोंके द्वारा एकसौ आठ वार अप-राजित मंत्रका जाप और श्री वर्द्धमान स्वामीकी सेवा करनी चाहिए। जैनशास्त्रोंमें श्री वर्द्धमान स्वामीके पांच नाम बत-लाये गये हैं – महावीर, महाधीर, सन्मति वर्द्धमान और वीर इन समस्त नामोंका स्मरण करते हुए तीन प्रदक्षिणा देकर विद्वानोंको अर्घ देना चाहिए। व्रत पालन करनेवालोंको उन दिनों उनकी कथायें सुननी चाहिए, जिन्होंने उक्त व्रतका पालन कर स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति की है। चित्तको स्थिर कर श्री अरहंतदेवका ध्यान करना अत्युत्तम है, कारण उनके ध्यानसे त्रैसठ शलाकाओंके पद प्राप्त होते हैं। रात्रिको पृथ्वीपर शयन तथा तीर्थंकर आदि महापुरुषोंकी स्तुति करनी चाहिए। जिन-धर्मकी प्रभावना इन्द्रियोंको वशमें करनेवाली हैं। इसके द्वारा भव्यजीव भवसागरसे पार उतरते रहते हैं। अतएव प्रत्येक व्यक्तिका कर्त्तव्य होता है कि वह प्रभावना करे। लब्धि-विधान व्रत तीन दिनोंतक वरावर करते रहना चाहिए। वह कर्म नाशक एवं इच्छित फल देनेवाला है। यह व्रत तीन वर्ष तक करना चाहिए। इसके वाद उद्यापन क्रिया करे। उद्यापन के लिए एक सुभव्य जिनालयका निर्माण कराये, जो हर प्रकार से शोभायुक्त हो। वह पापनाशक और पुण्यराशिका कारण होता है। उक्त जिनालयमें श्रीवर्द्धमान स्वामीकी सुन्दर प्रतिमा विराजमान करनी चाहिए,जो आपत्तिरूपी लताओंको नष्ट करने वाली है। इस प्रकार मन, वचन, कायसे शुद्ध होकर शान्ति वि-धान करना चाहिए। इसके लिए चावलोंके एकसौ आठ कमल

निर्मित करे और उसपर सुन्दर दीप रखे । श्री वर्द्धमान स्वामी के जिनालयमें सुगंन्धित जलसे पूर्ण सुवर्णके पांच कलश देने चाहिए । सोनेके पात्रोंमें रखे हुए पांच तरहके नैवेद्यसे उन कमलोंकी पूजा करे । साथ ही भ्रमरोंको विमोहित करनेवाला सुगन्धित द्रव्य-चन्दन केसरादि जिनालयमें समर्पित करे । भगवानकी प्रतिमाके लिये सुवर्णका सिंहासन प्रदान करे, जिससे वह अरहंत देवके चरणकमलोंकी कांतिसे सदैव प्रकाशित होता रहे । एक भामंडल भी प्रदान करे । वह सोनेका बना हुआ हो और जिसमें रत्न जड़े हों । जिसकी कांति सूर्य मंडलके प्रकाशको भी क्षीण करदेती हो । भगवानके कथनानुसार शास्त्र लिखाकर समर्पित करे, जिसे श्रवण कर लोग कुवुद्धिसे अंधे और वधिर न हो जांय । सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्रसे उत्तम पात्रोंको दान देना चाहिए, जिन्हें शत्रु मित्र सब समान दीखते हों । जो देश व्रत धारक हैं, वे मध्यम पात्र कहलाते हैं और जो असंयत सम्यग्दृष्टि है, वे जघन्य है । उन्हें भोजन कराना चाहिए और भोग संपत्ति लाभकी आकांक्षासे दान देना चाहिए । पात्रदान अमृतके तुल्य होता है । मिथ्यादृष्टि, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रको धारण करने वाले, फिर भी हिंसाका जिन्होंने त्याग कर दिया है । वे कुपात्र हैं एवं जिन्होंने न तो चारित्र धारण किया और न कोई व्रत किया, वे हिंसक मिथ्यादृष्टि जीव अपात्र कहे जाते हैं । अयोग्य क्षेत्र में बोये हुए बीजकी तरह इन्हें दिया हुआ दान नष्ट हो जाता है अर्थात् कुभोग भूमिकी उपलब्धि होती है । जिस प्रकार नीम

के वृक्षमें छोड़ा हुआ जल कड़वा ही होता है तथा सर्पको पिलाया हुआ दूध विष ही होता है,उसी प्रकार अपात्रको दिये हुए दानसे विपरीत फलकी प्राप्ति होती है। अर्थात् वह दान व्यर्थ चला जाता है। साथ ही आर्यिकाओंके लिये भक्तिके साथ शुद्ध सिद्धान्तकी पुस्तकें देनी चाहिए। उन्हें पहननेके लिए वस्त्र तथा पीछी, कमंडलु देने चाहिये। श्रावक-श्राविका ओंको आभरण, कीमती वस्त्र और अनेक नारियल समर्पित करे। जो स्त्री-पुरुष दीन और दुर्बल हैं-दीन हैं हीन हैं अथवा किसी दुःखसे दुखी हैं, उन्हें दयापूर्वक भोजन समर्पित करे। जीवोंको अभयदान दे, जिससे सिंह व्याघ्रादि किसी भी हिंसक जीवका भय न रहे। जो लोग कुष्टसे पीडित हैं, वात, पित्त, कफादि रोगसे दुखी हैं, उन्हें यथायोग्य औषधि प्रदान करे। किन्तु जिनके पास उद्यापनके लिए इतनी सामग्री मौजूद न हो, उन्हें भक्ति करनी चाहिए और अपनी असमर्थता नहीं समझनी चाहिए। कारण शुद्ध भावही पुण्य संपादनमें सहयोग प्रदान करता है। उन्हें उतना ही फल प्राप्त करनेके लिए तीन वर्ष तक और व्रत करना उचित है। आरम्भमें इस व्रतका पालन श्रीऋषभदेवके पुत्र अनन्त वीरने किया जिसकी कथा आदि पुराणमें विस्तारसे वर्णित है। मुनिराज-की अमृत वाणी सुनकर वहां उपस्थित राजाने अनेक श्रावक श्राविकाओंके साथ एवं उन तीनों कन्याओंने भी लब्धि विधान नामक व्रत धारण किये। सत्य है, जो भव्य हैं तथा जिनकी कामना मोक्ष-प्राप्तिकी है,वे शुभ कार्यमें देर नहीं करते। भवित-

व्यताके साथ संसारी जीवोंकी बुद्धि भी तदनुरूप हो जाती है। मुनिराजके उपदेशसे उन तीनों कन्याओंने उद्यापनके साथ लब्धिविधान व्रत किया और श्रावकोंके व्रत धारण किये। उन्होंने उत्तम क्षमा आदि दश धर्म तथा शीलव्रत धारण किये। कालान्तरमें उन तीनों कन्याओंने जिन-मन्दिरमें पहुंच कर मन वचन कर्मसे शुद्धतापूर्वक भगवानकी विधिवत पूजा की। इसके पश्चात् आयुपूर्ण होनेपर उन तीनों कन्याओंने समाधिमरण धारण किया, अरहन्त देवके वीजाक्षर मंत्रोंका स्मरण किया तथा भक्तिपूर्वक उनके चरणोंमें वे नत हुईं। मृत्युके पश्चात् उनका स्त्रिलिंग परिवर्तित हो गया और वे प्रभावशाली देव हो गये। उनके शरीर यौवनसे सुशोभित हुए। उन्हें अवधिज्ञानसे ज्ञात हो गया कि वे लब्धिविधान व्रतके फल स्वरूप स्वर्गमें देव हुए हैं। वे सदा देवांगनाओंके साथ सुख भोगते थे। उनका शरीर पांच हाथ ऊंचा, उनकी आयु दश सागरकी तथा वे विक्रिया ऋद्धिसे सम्पन्न थे। उनकी मध्यम षड्लेश्या थी और तीसरे नरक तकका उन्हें अवधिज्ञान था। वे भगवान सर्वज्ञ देवके चरणोंकी इस प्रकार सेवा किया करते थे, जिस प्रकार एक भ्रमर सुगन्धित कमल पुष्पोंपर लिपटा रहता है। साथ ही अनेक देव देवियां भी उनके चरणोंकी सेवा किया करती थीं।

इस ओर राजा महीचन्द्रने भी संसारकी अनित्यता समझ कर अङ्गभूषण मुनिराजसे जिन-दीक्षा ग्रहण की। वे इन्द्रियोंका सर्वदा दमनकर महा तपश्चरण करने लगे तथा परिषहोंको जीतकर उन्होंने मूलगुण और उत्तरगुणोंको धारण किया।

भगवान महावीर स्वामीके समवशरणमें कहा जाता है—गौतम स्वामी किस स्थानपर उत्पन्न हुए। उन्होंने किस प्रकार लब्धि प्राप्त की। वे किस प्रकार गणधर हुए और उन्हे मोक्ष कैसे प्राप्त हुआ। इसे ध्यान देकर श्रवण कर।

जम्बूद्वीपके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध भरतक्षेत्र है। उसमें धर्मात्मा लोगोंके निवास करने योग्य मगध नामका एक देश है। उसी देशमें ब्राह्मण नामका अत्यन्त रमणीक एक नगर है। वहां बड़े बड़े वेदज्ञ निवास करते हैं तथा वह नगर वेदध्वनिसे सदा गूंजता रहता है। वह नगर धन धान्यसे परिपूर्ण है और वहांके बाजारोंकी पंक्तियां अत्यन्त मनोहर हैं। अनेक चैत्यालयोंसे सुशोभित ब्राह्मण नगर बहुपदार्थोंसे परिपूर्ण हुआ था। वहां अनेक प्रकारके जलाशय थे—वृक्ष थे। उनमें सब प्रकारके धान्य उत्पन्न होते थे। वहांके मकानोंकी ऊंची पंक्तियां अपनी अपूर्व विशेषता प्रकट करती थीं। वहांके निवासी मनुष्य भी सदाचारी और सौभाग्यशाली थे। तरुण-तरुणियां क्रीड़ा-रत रहते थे। वहांकी सुन्दरियां अपनी सुन्दरतामें रम्भाको भी मात करती थीं। उसी नगरमें शांडिल्य नामका एक ब्राह्मण रहता था। वह विद्याओंमें निपुण और सदाचारी था। दानी तथा तेजस्वी था। उसकी पत्नीका नाम स्थंडिला था। वह सौभाग्यवती, पतिव्रता और रतिके समान रूपवती थी। केवल यही नहीं, उसका हृदय नम्र और दयालु था। वह मधुर भाषण करनेवाली एवं याचकोंको दान देनेवाली थी। किन्तु उस ब्राह्मणकी केसरी नामकी एक दूसरी ब्राह्मणी थी। वह

भी सर्वगुणोंसे सम्पन्न तथा अपने पतिको सदा प्रसन्न रखती थीं। एक दिनकी घटना है। स्थंडिला अपनी कोमल सय्या पर सोयी हुई थी। उसने रातमें पुत्र उत्पन्न होनेवाले शुभ स्वप्न देखे। उसी दिन एक बड़ा देव स्वर्गसे चयकर स्थंडिला के गर्भमें आया। गर्भावस्थाके बाद स्थंडिलाका रूप निखर उठा। वह मोतियोंसे भरी हुई सीप जैसी सुन्दर दीखने लगी। उस ब्राह्मणीका मुख कुछ श्वेत हो गया था, मानो पुत्ररूपी चन्द्रमा समस्त संसारमें प्रकाश फैलानेकी सूचना दे रहा है। शरीरमें किंचित कृशता आ गयी थी। स्तनोंके अग्र-भाग श्याम हो गये थे। मानों वे पुत्रके आगमनकी सूचना दे रहे हों। उस समय स्थंडिला जिनदेवकी पूजामें तत्पर रहने लगी, जैसे इन्द्राणी सदा भगवानकी पूजामें चित्त लगाती है। स्थंडिला शुद्ध चारित्र धारण करनेवाले सम्यक्ज्ञानी मुनियों-को अनेक पापनाशक शुद्ध आहार देती थी। सूर्यो-दयके समय जिस समय शुभग्रह शुभरूपसे केन्द्रमें थे; उस समय, श्रीऋषभ देवकी रानी यश-स्वतीकी तरह, स्थंडिलाने मनोहर अंगोंके धारक पुत्रको उत्पन्न किया। उस काल सारी दिशायें प्रकाशित हो गयीं और चारों ओर सुगन्धित वायु संचरित होने लगी तथा आकाश में जयघोष होने लगे। घरके समस्त स्त्री-पुरुषोंमें आनन्द छा गया। चारों ओर मनोहर बाजे बजने लगे। जिस तरह जयंतसे इन्द्र और इन्द्राणीको प्रसन्नता होती है एवं स्वामी कार्तिकेय से महादेव पार्वतीको, उसी प्रकार ब्राह्मण और ब्राह्मणीको

अपूर्व प्रसन्नता हुई। साण्डिल्यने मणि, सोने,चांदी, वस्त्र आदि मुहमांगे दान दिये। स्त्रियां मंगल गान गारही थीं। जैसे किसी दरिद्रको खजाना देखकर प्रसन्नता होती है, जैसे पूर्ण चन्द्रमा को देखकर समुद्र उमड़ता है, उसी प्रकार ब्राह्मण अपने पुत्रका मुंह देखकर प्रसन्नतासे विह्वल हो रहा था। ठीक उसी समय एक निमित्त ज्ञानीने ज्योतिषके आधार पर बतलाया कि, यह पुत्र गौतम स्वामीके नामसे प्रख्यात होगा। ब्राह्मणका वह पुत्र अपने पूर्वपुण्यके उदयसे सूर्य सा तेजस्वी और कामदेव सा कान्तियुत् था। एक दूसरा देव भी स्वर्गसे चय कर उसी स्थंडिलाके गर्भमें आया। वह ब्राह्मणका गार्ग्य नामक पुत्र हुआ। यह भी समस्त कलाओंसे युक्त था। इसी प्रकार एक तीसरा देव स्वर्गसे चयकर केसरीके उदरमें आया, जो भार्गव नामक पुत्र हुआ। ये तीनों ब्राह्मण पुत्र, कुन्तीके पुत्र पांडवोंकी भांति प्रेमसे रहते थे। आयुवृद्धिके साथ उनकी कांति गुण और पराक्रम भी बढ़ते जाते थे। उन्होंने व्याकरण,छंद,पुराण, आगम और सामुद्रिक विद्यायें पढ़ डाली। ब्राह्मणका सबसे बड़ा पुत्र गौतम ज्योतिष शास्त्र, वैद्यक शास्त्र, अलंकार, न्याय आदि सबमें निपुण हुआ। देवोंके गुरु बृहस्पतिकी तरह गौतम ब्राह्मण भी किसी शुभ ब्राह्मणशालामें पांच सौ शिष्योंका अध्यापक हुआ। उसे अपने चौदह महाविद्याओंमें पारंगत होनेका बड़ा ही अभिमान था। वह विद्वताके मदमें चूर रहता था।

राजा श्रेणिक! जो व्यक्ति परोक्षमें तीर्थंकर परमदेवकी वन्दना करता है, वस्तुतः वह तीनों लोकोंमें वन्दनीय होता

है। और जो प्रत्यक्षमें वन्दना करता है; वह इन्द्रादिकों द्वारा पूजनीय होता है। राजन्! इस व्रत रूपी वृक्षकी जड सम्यग्दर्शन ही है। अत्यन्त शांत परिणामोंका होना स्कंध है, करुणा शाखायें हैं। इसके पत्ते पवित्र शील हैं, तथा कीर्ति फूल हैं। अतएव यह व्रत रूपीं वृक्ष तुम्हें मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति कराये। उत्तम धर्मके प्रभावसे ही राज्यलक्ष्मी एवं योग्य लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। धर्मके ही अद्भुत प्रभावसे इन्द्रपद प्राप्त होता है, जिनके चरणोंकी सेवा देव करते हैं। चक्रवर्तीकी ऐसी विभूति प्रदान कराने वाला धर्म ही है। यही नहीं, तीर्थंकर जैसा सर्वोत्तम पूज्यपद भी धर्मके प्रभावसे ही प्राप्त होता है। अतएव तू सर्वदा धर्ममें लीन रह।

———

अथ चतुर्थ अधिकार

भरतक्षेत्रके अन्तरगत ही अत्यन्त रमणीक एवं विभिन्न नगरोंसे सुशोभित विदेह नामका एक देश है। उस देशमें कुंड-पुर नामक एक नगर अपनी भव्यताके लिए प्रख्यात है। वह नगर बड़े ऊंचे कोटोंसे घिरा हुआ है एवं वहां धर्मात्मा लोग निवास करते हैं। वहांके मणि, कांचन आदि देखकर यही होता है कि, वह दूसरा स्वर्ग है। उस नगरमें सिद्धार्थ नामके एक राजा राज्य करते थे। उनकी धार्मिकता प्रसिद्ध थी। वे अर्थ धर्म, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थोंको सिद्ध करने वाले थे। उन्हें विभिन्न राजाओंको सेवाएं प्राप्त थी। इतना ही नहीं सुन्दरतामें कामदेवको परास्त करने वाले, शत्रुजीत, दाता और भोक्ता थे। नीतिमें भी निपुण थे—अर्थात् समस्त गुणोंके आगार थे। उनकी रानीका नाम त्रिशला देवी था। रानीकी सुन्दरताका क्या कहना—चन्द्रमाके समान मुख मण्डल, मृग की सी आंखें, कोमल हाथ और लाल अधर अपनी मनोहर छटा दिखला रहे थे। उसकी जांघे कदलीके स्तम्भों सी थीं। नाभि नम्र थी, उदर कृश था, स्तन उन्नत और कठोर थे, धनुषके समान भौंहें एवं शुकके समान नाक थी। ऐसी रूपवती महारानीके साथ राजा सिद्धार्थ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे।

इन्द्रकी आज्ञा थी—भगवान महावीर स्वामीके जन्म कल्याणकके १५ मास पूर्वसे ही सिद्धार्थके घर रत्नोंकी वर्षा करनेकी। देव लोग इन्द्रकी आज्ञाका अक्षरशः पालन करते थे। अष्टादिक कन्यायें एवं और भी मनोहर देवियां राजमाताकी सेवामें तत्पर रहती थीं। एक दिन महारानी त्रिशाला देवी कोमल सज्जा पर सोयी हुई थीं। उन्होंने पुत्रोत्पतिकी सूचना देनेवाले सोलह स्वप्न देखे।—ऐरावत हाथी, श्वेत वैल, गरजता हुआ सिंह, शुभ लक्ष्मी, भ्रमरोंके कलरवसे सुशोभित दो पुष्प मालायें, पूर्ण चन्द्रमा, उदय होता हुआ सूर्य, सरोवरमें क्रीड़ारत दो मछलियां, सुवर्णके दो कलश, निर्मल सरोवर, तरंगयुत समुद्र, मनोहर सिंहासन, आकाशमें देवोंका विमान, सुन्दर नाग-भवन, कांतिपूर्ण रत्नोंकी राशि और बिना धूम्रकी अग्नि। प्रातःकाल बाजोंके शब्द सुनकर महारानी उठीं। वे पूर्ण शृंगार कर महाराजके सिंहासन पर जा बैठीं। उन्होंने प्रसन्न चित्त होकर महाराजसे रातके स्वप्न कह सुनाये। उत्तरमें महाराज सिद्धार्थ क्रमसे स्वप्नोंके फल कहने लगे—ऐरावत हाथी देखनेका फल—वह पुत्र तीनों लोकोंका स्वामी होगा। वैल देखनेका फल—धर्म प्रचारक और सिंह देखनेका फल अद्भुत पराक्रमी होगा। लक्ष्मी का फल यह होगा कि, देव लोग मेरु दण्ड पर्वत पर उसका अभिषेक करेंगे। मालाओंके देखनेका फल, उसे अत्यन्त यशस्वी होना चाहिए तथा चन्द्रमाका फल यह होगा कि वह मोहनीय कर्मोंका नाशक होगा। सूर्यके देखनेसे सत्पुरुषोंको धर्मोपदेश देनेवाला होगा। दो मछलियोंके देखनेका फल सुखी होगा और

कलश देखनेसे उसका शरीर समस्त शुभ लक्षणोंसे परिपूर्ण होगा। सरोवर देखनेसे लोगोंकी तृष्णा दूर करेगा तथा समुद्र देखनेसे केवलज्ञानी होगा। सिंहासन देखनेसे वह स्वर्गसे आकर अवतार ग्रहण करेगा, नाग भवन देखनेसे वह अनेक तीर्थोंका करने वाला होगा एवं रत्नराशि देखनेसे वह उत्तम गुणोंका धारक होगा तथा अग्नि देखनेसे कर्मोंका विनाशक होगा। इस प्रकार पति द्वारा स्वप्नोंका हाल सुनकर महारानी की प्रसन्नता बहुत बढ़ गयी। वे जिनेन्द्र भगवानके अवतारकी सूचना पाकर अपने जीवनको सार्थक मानने लगीं।

स्वप्नके आठवें दिन अर्थात् आषाढ़ शुक्ल षष्ठीके दिन प्राणत स्वर्गके पुष्पक बिमानके द्वारा आकर इन्द्रके जीवने महारानी त्रिशलाके मुखमें प्रवेश किया। उस समय इन्द्रादि देवोंके सिंहासन कंपित होगये। देवोंको अवधिज्ञानके द्वारा ज्ञात हो गया। वे सब वस्त्राभरण लेकर आये और माता की पूजा कर अपने स्थानको लौट गये। त्रिशला देवीने चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन शुभग्रह और शुभलग्नमें भगवान महावीर स्वामीको जन्म दिया। उस समय दिशायें निर्मल हो गयीं और वायु सुगन्धित वहने लगी। आकाशसे देवोंने पुष्पोंकी वर्षाकी और दुदुंभी बजाई। जन्मके समय भी भगवानके महापुण्यके उदय होनेसे इन्द्रोंके सिंहासन कांप उठे। उन्होंने अवधिज्ञानसे जान लिया कि, भगवान महावीर स्वामीने जन्म ग्रहण किया। समस्त इन्द्र और चारों प्रकारके देव गाजे-बाजेके साथ कुण्डपुर में पधारे। राजमहलमें पहुंचकर देवोंने माताके समक्ष विराजमा-

न भगवानको देखा और भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार किया । उस समय इन्द्राणीने एक मायावी वालक बनाकर माताके सामने रख दिया और उस बालकको उठाकर सौधर्म इन्द्रको सौंप दिया। सौधर्म इन्द्र भी उस वालकको ऐरावत हाथीपर विराजमान किया और आकाश मार्ग द्वारा चैत्यालयोंसे सुशोभित मेरु-पर्वत पर ले गया । देवोंने मंगल ध्वनि की, बाजे बजने लगे, किन्नर जातिके देव गाने लगे और देवांगनाओंने शृङ्गार, दर्पण ताल आदि मंगल द्रव्य धारण किये । सब लोग मेरु पर्वतकी पांडुक शिला पर पहुंचे । वह शिला सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और आठ योजन ऊंची थी। उस पर एक अत्यन्त मनोहर सिंहासन था । देवोंने उसी सिंहासन पर भगवानको आसीन किया और वे नम्रता और भक्तिपूर्वक उनका अभिषेकोत्सव करने लगे । इन्द्रादिक देवोंने मणि और सुवर्ण निर्मित एक हजार आठ कलशों द्वारा क्षीरोदधि समुद्रका जल लाकर भगवानका अभिषेक किया । इस अभिषेकसे मेरु पर्वत तक कांप उठा, पर वालक भगवान निश्चल रूपसे वैठे रहे । उस समय देवोंने भगवानके स्वाभाविक बलका अनुमान लगा लिया। इसके पश्चात् देवोंने जन्म-मरणादि दुखोंकी निवृति करनेके लिए चन्दनादि आठ शुभद्रव्योंसे भगवानकी पूजाकी । भगवान जिनेन्द्रकी पूजा सूर्यकी प्रभाके समान धर्म प्रकाश करने वाली और पापांधकारका नाश करने वाली होती है। वह भव्य जीवरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करती है । देवोंने उस वालकका शुभ नाम वीर रखा। अप्सराय

तथा अनेक देव उस समय नृत्य कर रहे थे। मति, श्रुत और अवधिज्ञानोंसे परिपूर्ण भगवानको वालकके योग्य वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित किया गया तथा पुनः देवोंने अपनी इष्टसिद्धिके लिए स्तुति आरंभ की—जिस प्रकार सूर्यकी प्रभा के विना कमलोंकी प्रफुल्लता संभव नहीं, उसी प्रकार हे वीर ! आपके वचनके अभावमें प्राणियोंको तत्वज्ञान प्राप्त होना कदापि संभव नहीं। इस प्रकार स्तुति समाप्त होने पर इन्द्रादिक देवोंने भगवानको पुनः ऐरावत पर आसन किया और आकाश मार्ग द्वारा कुंडपुर आये। उन्होंने भगवानके माता-पिताको यह कहते हुए वालकको समर्पित कर दिया कि आपके पुत्रको मेरु पर्वत पर अभिषेक कराकर लाये हैं।' उन देवोंने दिव्य आभरण और वस्त्रोंसे माता-पिताकी पूजाकी। उनका नाम वल निरूपण किया और नृत्य करते हुए अपने स्थानको चल दिये। इसके पश्चात वालक भगवान, इन्द्रकी आज्ञासे आये हुए तथा भगवानकी अवस्था धारण किये हुए देवोंके साथ क्रीड़ा करने लगे। पश्चात वे वाल्यावस्थाको पार कर यौवनवस्थाको प्राप्त हुए। उनकी कांति सुवर्णके समान तथा शरीरकी ऊंचाई सात हाथकी थी। उनका शरीर निःस्वेदता आदि दश अतिशयोंसे सुशोभित था। इस प्रकार भगवान ने कुमारकालके तीस वर्ष व्यतीत किये। इस अवस्थामें भगवान विना किसी कारण कर्मोंको शान्त करनेके उद्देश्यसे विरक्त होगये। उन्हें अपने आप-आत्मज्ञान होगया। तत्काल ही लौकांतिक देवोंका आगमन हुआ। उन्होंने नमस्कार कर कहा-

'भगवान तपश्चरणके द्वारा कर्मोंको विनष्ट कर शीघ्रही केवलज्ञान प्राप्त कीजियें। वे ऐसा निवेदन कर वापस चले गये। भगवानने समस्त परिजनोंसे पूछा। पुनः मनोहर पालकी में सवार हुए। इन्द्रने पालकी उठाई और आकाश द्वारा भगवानको नामखण्ड नामक वनमें पहुंचाया। वहां पहुंचकर इन्द्रने पालकी उतारदी और भगवान एक स्फटिक शिला पर उत्तर दिशाकी ओर मुंहकर विराजमान होगये। अत्यन्त बुद्धिमान भगवानने, मार्गशीर्ष कृष्णा दशमीके दिन सायंकालके समय दीक्षा ग्रहणकी और सर्व प्रथम उन्होंने पृष्ठोपवास करनेका नियम धारण किया। भगवानके पंचमुष्टि लोंच वाले केशोंको इन्द्रने मणियोंके पात्रमें रखा और उन्हें क्षीर सागरमें पधराया। अन्य देवगण चतुःज्ञान विभूषित भगवानको नमस्कार कर अपने अपने स्थानको चले गये। पारणाके दिन भगवान कुल्य नामक नगरके राजा कुल्यके घर गये। राजाने नवधाभक्तिके साथ भगवानको आहार दिया। आहारके बाद वे भगवान अक्षयदान देकर वनको चले गये। उस आहारदान का फल यह हुआ कि, देवोंने राजाके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा की। सत्य है, पात्रदानसे धर्मात्मा लोगोंको लक्ष्मी प्राप्त होती है।

एक दिनकी घटना है। भगवान अतिमुक्त नामक श्मशान में प्रतिमायोग धारण कर विराजमान थे। उस समय भवनाम के रुद्र (महादेव) ने उन पर अनेक उपसर्ग किया, पर उन्हें जीतनेमें समर्थ न होसका। अन्तमें उसने आकर भगवानको

नमस्कार किया और उनका नाम महावीर रखा। इसप्रकार तप करते हुए भगवानको जब बारह वर्ष व्यतीत होगये, तब एक ऋजुकुल नामकी नदीके समीपवर्ती जृंभक ग्राममें वे पृष्ठोपवास (तेला) धारण कर किसी शिलापर आसीन हुए। उस दिन वैशाख शुक्ल दशमी थी। उसी दिन उन्होंने ध्यानरूपी अग्निसे घातिया कर्मोंको नष्टकर केवलज्ञानकी प्राप्ति की। केवल-ज्ञान होजाने पर शरीरकी छाया न पड़ना आदि दशों अति-शय प्रकट होगये। उस समय इन्द्रादिकोंने आकर भगवानको भक्तिके साथ नमस्कार किया। इन्द्रकी आज्ञासे कुवेरने चार कोस लंबा-चौड़ा समवशरण निर्मित किया। वह मानस्तंभ ध्वजा दण्ड घंटा, तोरण, जलसे परिपूर्ण खाई, सरोवर, पुष्प वाटिका, उच्च धुलि प्राकार नृत्य शालाओं, उपवनोंसे सुशो-भित था तथा वेदिका, अन्तर्ध्वजा सुवर्णशाला, कल्पवृक्ष आदिसे विभूषित था। उसमें अनेक महलोंकी पंक्तियां थीं। वे मकान सुवर्ण और मणियोंसे बनाये गये थे। वहां ऐसी मणियोंकी शालायें थीं, जो गीत और बाजोंसे सुशोभित हो रही थीं। समवशरणके चारों ओर चार बड़े बड़े फाटक थे। वे सुवर्णके निर्मित भवनोंसे भी अधिक मनोहर दीखते थे। उसमें बारह सभायें थीं, जिसमें मुनि, अर्जिका कल्पवासी देव, ज्योतिषी देव, व्यंतर देव, भवनवासी देव, कल्पवासी देवांगनायें ज्योतिषीदेवोंकी देवांगनायें भवनवासी देवोंकी देवांगनायें, मनुष्य तथा पशु उपस्थित थे। अशोकवृक्ष, दुंदभी, छत्र, भामण्डल, सिहासन, चमर पुष्पवृष्टि और दिव्यध्वनि

उक्त आठों प्रातिहार्योंसे श्रीवीर भगवान सुशोभित होरहे थे। इसके अतिरिक्त अठारह दोषोंसे रहित और चौतीस अतिशयोंसे सुशोभित थे। अर्थात् विश्वकी समग्र विभूतियां उनके साथ विराजमान थीं। इस प्रकार भगवानको आसीन हुए तीन घंटे से अधिक होगये,पर उनकी दिव्यवाणी मौन रही। भगवानको मौनावस्थामें देखकर सौधर्मके इन्द्रने अवधिज्ञानसे विचार किया, कि यदि गौतमका आगमन हो जाय तो भगवानकी दिव्यवाणी उच्चरित हो। गौतमको लानेके विचारसे इन्द्रने एक वृद्धका रूप बना लिया, जिसके अंग २ कांप रहे थे। वह वृद्ध ब्राह्मण नगरकी गौतमशालामें जा पहुंचा। वृद्धके कांपते हुए हाथोंमें एक लकड़ी थी। उसके मुंहमें एक भी दांत नहीं थे, जिससे पूरे अक्षरभी नहीं निकल पाते थे। उस वृद्धने शालामें पहुंच कर आवाज लगाई—ब्राह्मणो! इस शालामें कौनसा व्यक्ति हैं, जो शास्त्रोंका ज्ञाता हो और मेरे समस्त प्रश्नोंका उत्तरदे सकता हो। इस संसारमें ऐसे कम मनुष्य हैं जो मेरे काव्योंको विचार कर ठीक ठीक उत्तर दे सकें। यदि इस श्लोकका ठीक अर्थ निकल जायगा तो मेरा काम बन जायगा, आप धर्मात्मा हैं, अत; मेरे श्लोकका अर्थ बतलादेना आपका कर्त्तव्य है। इस तरह तो अपना पेट पालनेवालोंकी संख्या संसारमें कम नहीं है, पर परोपकारी जीवोंकी संख्या थोड़ी है। मेरे गुरु इस समय ध्यानमें लगे हैं और मोक्ष पुरुषार्थको सिद्ध कर रहे है, अन्यथा वे बतला देते। यही कारण है हैं कि आपको कष्ट देनेके लिए उपस्थित हुआ हूं। आपका

कर्त्तव्य होता है कि, इसका समाधन करदें। उस वृद्धकी बातें सुनकर अपने पांचसौ शिष्योंद्वारा प्रेरित गौतम शुभ वचन कहने लगा-हे वृद्ध! क्या तुझे नहीं मालूम, इस विषयमें अनेक शास्त्रोंमें पारगत और पांचसौ शिष्योंका प्रतिपालक मैं प्रसिद्ध हूं। तुम्हें अपने काव्यका बड़ा अभिमान होरहा है। कहो तो सही,उसका अर्थ मैं अभी बतला दूं। पर यहतो बताओ कि मुझे क्या दोगे? उस वृद्धने कहा—ब्राह्मण! यदि आप मेरे काव्यका समुचित अर्थ बतला देंगे तो मैं आपका शिष्य बन-जाऊंगा। किन्तु यह भी याद रखिये कि यदि आपने यथावत उत्तर नहीं दिया तो आपको भी अपनी शिष्यमण्डलीके साथ मेरे गुरुका शिष्य हो जाना पड़ेगा। गौतमने भी स्वीकृति देदी। इस प्रकार इन्द्र और गौतम दोनों ही प्रतिज्ञामें बंध गये। सत्य है ऐसा कौन अभिमानी हैं जो न करने योग्य काम नहीं कर डालता। इसके पश्चात् सौधर्मके इन्द्रने गौतमके अभिमानको चूर करनेके उद्देश्यसे आगमके अर्थको सूचित करनेवाला तथा गंभीर अर्थसे भरा हुआ एक काव्य पढ़ा। वह काव्य यह था—

"धर्मद्वयं त्रिविधकाल समग्रकर्म,
षड् द्रव्यकाय सहिताः समयैश्च लेश्याः।
तत्त्वानि संयमगतीसहिता पदाथ—
रंगप्रवेदमनिशत्रदचास्ति कायम्,।"

धर्मके दो भेद कौन कौनसे हैं। वे तीन प्रकारके काल कौन हैं; उनमें काय सहित द्रव्य कौन हैं, काल किसे कहते हैं, लेश्या कौन कौनसी और कितनी हैं। तत्त्व कितने और कौन

कौन हैं, संयम कितने हैं, गति कितनी और कौन है तथा पदार्थ कितने और कौन हैं, श्रुतज्ञान, अनुयोग और सास्ति काय कौन और कितने है, यह आप बतलाइये। बूढ़ेके मुंहसे श्लोक सुनकर गौतमको बड़ी ग्लानि हुई। उसने मनमेंही विचार किया कि, मैं इस श्लोकका अर्थ क्या बतलाऊं। इस वृद्धके साथ वादविवाद करनेसे कौनसी लाभ-की-प्राप्ति होगी। इससे तो अच्छा हो कि इसके गुरुसे शास्त्रार्थ किया जाय। गौतमने बड़े अभिमानसे कहा—चल रे ब्राह्मण! अपने गुरुके निकट चल। वहीं पर इस विषयकी मीमांसा होगी। वे दोनों विद्वान सबको साथ लेकर वहांसे रवाना हुए। मार्गमें, गौतम ने विचार किया जब इस वृद्धके प्रश्नका उत्तर मुझसे नहीं दिया गया, तो इसके गुरुका उत्तर कैसे दिया जायगा। वह तो अपूर्व विद्वान होगा। इस प्रकारसे विचार करता हुआ गौतम समवशरणमें पहुंचा। इन्द्रको अपनी कार्य सिद्धि पर बड़ी प्रसन्नता हुई। सत्य है, सिद्धि होजाने पर किसे प्रसन्नता नहीं होती। अर्थात् सबको होती है। वहां मानस्तम्भ अपनी अद्भुत-शोभासे तीनों लोकोंको आश्चर्यमें डाल रहा था। उसके दर्शन मात्रसे ही गौतमका दर्प चूर्ण विचूर्ण होगया। उसने विचार किया कि जिस गुरुके सन्निकट इतनी विभूति विद्यमान हो, वह क्या पराजित किया जासकता है, असंभव हैं। इसके बाद वीरनाथ भगवानका दर्शन कर वह गौतम उनकी स्तुति करने लगा—प्रभो! आप कामरूपी योधाओंको परास्त करनेमें निपुण हैं। सत्पुरुषोंको उपदेश देनेवाले हैं। अनेक मुनिराजों

का समुदाय आपकी पूजा करता है। आप तीनों लोकोंके तारक और उद्धारक हैं। आप कर्म-शत्रुओंको नाश करनेवाले हैं तथा त्रैलोक्यके इन्द्र आपकी सेवामें लगे रहते हैं। ऐसी विनम्र स्तुतिकर गौतम, भगवानके चरणोंमें नत हुआ। इसके पश्चात् वह ऐहिक विषयोंसे विरक्त होगया। कालान्तरमें उसने पांचसौ शिष्य मंण्डली तथा अन्य दो भ्राताओंके साथ जिन-दीक्षा लेली। सत्य है,जिन्हें संसारका भय है,जो मोक्षरूपी लक्ष्मीके उपासक हैं, वे जराभी देर नहीं करते। श्री वीरनाथ भगवानके समवशरणमें चारों ज्ञानोंसे विभूषित, इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति आदि ग्यारह गणधर हुए थे। उन्होंने पूर्वभवमें लब्धिविधान नामक व्रत किया था, जिसके फल स्वरूप वे गणधर पद पर आसीन हुए थे। दूसरे लोग भी, जो इस व्रतका पालन करते हैं,उन्हें ऐसी ही विभूतियां प्राप्त होतीहैं। इसके बाद भगवानकी दिव्यवाणी उच्चरित होने लगी। मोहांधकारको नाश करनेवाली वह दिव्यध्वनि भव्यरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करने लगी। भगवानने जीव, अजीव, आदि सप्ततत्व, छः द्रव्य, पंच आस्तिकाय, जीवोंके भेद आदि लोकाकाशके पदार्थोंके भेद और उनके स्वरूप बतलाये। समस्त परिग्रहोंको परित्याग करनेवाले गौतमने पूर्वपुण्यके उदयसे भगवानके समस्त उपदेशोंको ग्रहण कर लिया। जैनधर्मके प्रभावसे भव्योंकी संगति प्राप्त होती है, उपयुक्त, कल्याण कारक मधुर वचन, अच्छी बुद्धि आदि सर्वोत्तम विभूतियां सहजमें ही प्राप्त होती हैं। इस धर्मके प्रभावसे उत्तम संतानकी प्राप्ति और

चन्द्रमा तथा वर्फके समान शुभकीर्ति प्राप्त होती हैं। धर्मके प्रभावसे ही बड़ी विभूतियां और अनेक सुन्दरी स्त्रियां प्राप्त होती हैं और सुरेन्द्र, नगेन्द्र और नागेन्द्रके पद भी सुलभ हो जाते हैं।

इसके पश्चात् मुनिदेव मनुष्य आदि समस्त भव्यजीवोंको प्रसन्न करते हुए महाराज श्रेणिकने भगवानसे प्रार्थना की कि, हे भगवन ! हे वीर प्रभो ! उस धर्मको सुननेकी हमारी प्रबल इच्छा है कि जिससे स्वर्ग और मोक्षके सुख सहजसाध्य हैं। आप विस्तार पूर्वक कहिये। उत्तरमें भगवानने दिव्यध्वनि के द्वारा कहा—राजन ! अब मैं मुनि और गृही दोनोंके धारण करने योग्य धर्मका स्वरूप बतलाता हूं। तुझे ध्यान देकर सुनना चाहिए। संसार रूपी भवसमुद्रमें डूबते हुए जीवोंको निकाल कर जो उत्तम पदमें धारण करादे, उसे धर्म कहते हैं। धर्मका यही स्वरूप अनादि कालसे जिनेंद्रदेव कहते चले आये हैं। सबसे उत्तम धर्म अहिंसा हैं। इसी धर्मके प्रभावसे जीवोंको चक्रवर्तीके सुख उपलब्ध होते हैं। अतएव समस्त संसारी जीवों पर दयाका भाव रखना चाहिए। दया अपार सुख प्रदान करने- वाली एवं दुख रूपी वृक्षोंको काटनेके लिए कुठारके तुल्य होती है। सप्त व्यसनोंकी अग्निको बुझानेके लिए यह दया हीं मेघ स्वरूप है। यह स्वर्गमें पहुंचानेके लिए सोपान है और मोक्षरूपी संपत्ति प्रदान करनेवाली है। जो लोग धर्मकी साधनाके लिए यज्ञादिमें प्राणियोंकी हिंसा करते हैं, वे विषैले सपके मुंहसे अमृत झरनेकी आशा रखते हैं। यह संभव है कि जलमें पत्थर

तैरने लगे, अग्नि ठंढी होजाय, किन्तु हिंसा द्वारा धर्मकी प्राप्ति त्रिकालमें भी संभव नहीं हो सकती। जो भील लोग धर्मकी कल्पना कर जंगलमें आग लगा देते हैं, वे विष खाकर प्राणकी रक्षा चाहते हैं। अथवा जो लोलुपी मनुष्य जीवोंकी हत्याकर उनका मांस खाते हैं, वे महादुःख देनेवाली नरंकगतिं में उत्पन्न होते है। जीवोंकी हिंसा करनेवालेको मेरू पर्वतके समान नर्कके दुख भोगने पड़ते हैं। न तो छाछ से घी निकाला जा सकता हैं न विना सूर्यके दिन हो सकता है, न लेप मात्रमें मनुष्यकी क्षुधा मिट सकती है, उसी प्रकार हिंसाके द्वारा सुख-प्राप्तिकी आशा करना दुराशा मात्र हैं। प्राणियों पर दया करनेवाले मनुष्य युद्धमें, वनमें, नदी एवं पर्वतों पर भी निर्भय रहते हैं। परहिंसकों की आयु अतिअल्प होती है। या तो वे उत्पन्न होते ही मर जाते हैं, या वादमें किसी समुद्र नदी आदिमें डूबकर मृत्युको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार असत्य भाषणसे भी महान पाप लगता है,जिसके पापोदयसे नरकादिके दुख प्राप्त होते हैं। यद्यपि यश बड़ा आनन्द दायक होता हैं, पर असत्य भाषणसे वह भी नष्ट हो जाता हैं। असत्य विनाश का घर है, इससे अनेक विपत्तियां आती हैं। यह महापुरुषों द्वारा एक दम निन्दनीय है एवं मोक्षमार्गका अवरोधक है। अतएव आत्मज्ञानसे विभूषित विद्वान पुरुषोंको चाहिए कि वे कभी असत्यका आश्रय न लें। देवोंकी आराधना करनेवाले सदा सत्य बोला करते हैं। सत्यके प्रसादसे विष भी अमृतके तुल्य हो जाता है। शत्रु भी मित्र हो जाते हैं एवं सर्प

श्री माला बन जाता है। जो लोग असत्य भाषणके द्वारा सद्धर्म प्राप्तिकी आकांक्षा करते हैं, वे विना अंकुर रोपे ही धान्य होने की कल्पना करते हैं। बुद्धिमान लोगोंको चाहिए कि वे हिंसा और असत्यके समान चोरीका भी सर्वथा परित्याग कर दें। चोरी पुण्य-लताको नष्ट करनेवाली तथा आपत्तिको वृद्धि करनेवाली होती है। चोरको नरककी प्राप्ति होती है, वहाँ छेदन-ताड़न आदि विभिन्न प्रकारके दुख भोगने पड़ते हैं। चोरको सब जगह सजा मिलती है,राजा भी प्राणदण्डकी आज्ञा देता है तथा अनेक प्रकारके कष्ट सहन करने पड़ते हैं। पर जो पुरुष चोरी नहीं करता, उसे जन्म-मृत्युके बन्धनसे मुक्त करनेवाली मोक्ष रूपी स्त्री स्वयं स्वीकार कर लेती है! चोरीका परित्याग कर देनेसे संसारकी सारी विभूतियां, सुन्दरी स्त्रियां एवं उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। जो लोग चोरी करते हुए सुख की आकांक्षा करते हैं, वे अग्निके द्वारा कमल उत्पन्न करना चाहते हैं। यदि भोजन कर लेनेसे अजीर्णका दूर होना, विना सूर्यके दिन निकलना और बालू पेरनेसे तेलका निकलना संभव भी हो तो चोरीसे धर्मकी प्राप्ति कभी संभव नहीं हो सकती। शीलव्रतके पालनसे चारित्रकी सदा वृद्धि होती रहती है, नरक आदिके समस्त मार्ग बन्द हो जाते हैं और व्रतोंकी रक्षा होती है। यह व्रत मोक्षरूपी स्त्री प्रदान करनेवाला है। जो लोग शीलव्रतका पालन नहीं करते, वे संसारमें अपना यश नष्ट करते हैं। ब्रह्मचर्यके पालनके अभावमें सारी संपदायें नष्ट हो जाती हैं और अनेक प्रकारकी हिंसायें होती हैं। जो शील-

वृतका यथेष्ट पालन करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं और विलासिनी देवियां उनकी सेवामें तत्पर रहती हैं। शीलवृतका इतना प्रभाव होता है कि अग्निमें शीलता आजाती है, शत्रु मित्र बन जाते हैं तथा सिंह भी मृग बन जाता है। जिस प्रकार लवणके विना व्यजनका कोई मूल्य नहीं, उसी प्रकार शीलवृतके अभावमें समस्त वृत व्यर्थ हो जाते है। इसी शील-वृतका पालन करनेवाले सेठ सुदर्शनकी पूजा अनेक देवोंने मिलकर की थी। परिग्रह पापोंका मूल है। उससे परिणाम कलुषित हो जाते हैं और वह नीति दयाको नष्ट करनेवाला है। संसारके समस्त अनर्थ इसी परिगृह द्वारा सम्पन्न हुआ करते हैं। यह धर्मरूपी वृक्षको उखाड़ देता है और लोभरूपी समुद्रको बढ़ा देता है। मनरूपी हंसोंको धमकाता है और मर्यादारूपी तटको तोड़ देता है। क्रोध, मान, माया आदि कषाओंको उत्पन्न करनेवाला परिगृह ही है। वह मार्दव (कोमलता) रूपी वायुको उड़ा देनेके लिए वायु सरीखा है और कमलोंको नष्ट करनेके लिए तुषारके समान है। यह समस्त व्यसनोंका घर; पापोंकी खानि और शुभध्यानका काल है, इसे कोई भी बुद्धिमान गृहण नहीं कर सकता। जैसे आग, लकड़ीसे तृप्त नहीं होती, देव भोगोंसे तृप्त नहीं होते और उनकी आकांक्षा बढ़ती ही जाती हैं; उसी प्रकार मनुष्य अपार धन राशिसे तृप्त जो लोग परिगृह रहित हैं, वे ही वस्तुतः सर्वोत्तम हैं। वे पुण्य संचयके साथ धर्मरूपी वृक्ष उत्पन्न करते हैं और वैसे ही वे धर्मात्मा जैनधर्मका प्रसार करते हैं। इस प्रकार मुनिराज

लोग अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह इन पांचों व्रतोंका पूर्णरीतिसे पालन करते हैं और गृही अणुरूपसे पालन करते है। जो मुनिराज हिंसा आदि पापोंसे सदा विरक्त रहते है, तथा शरीरका मोह नहीं करते, उन्हें शीघ्र ही मोक्षकी प्राप्ति होजाती है। जिन्होंने इन्द्रिय विषयक ज्ञानको त्याग दिया हैं तथा मन वचन कायको वशमें कर लेनेकी जिनमें शक्ति है, वे ही महापुरुष मुनि कहलानेके अधिकारी होते हैं। जिन्होंने सर्व परिग्रहोंका सर्वथा परित्याग कर दिया है, उन्हें ही मोक्ष रूपी स्त्री स्वीकार करती है। शुभध्यानमें निरत मुनिराज ईर्या, भाषा, एषणा, आदान विक्षेपण और उत्सर्ग इन पांचों समितियोंका पालन करते हैं तथा उन्हींके अनुसार चलनेका नियम बनालेते हैं। जिस प्रकार सूर्यके उदय होते ही अन्धकार का सर्वथा विनाश होजाता है, उसी प्रकार तपश्चरणके द्वारा अंतरंग एवं बहिरंग दोनों प्रकारके कर्मोंका समुदाय विनष्ट हो जाता हैं। पर विना तपश्चरण किये कर्मके समूह नष्ट नहीं होते। वर्षाके अभावमें जिस प्रकार खेती नहीं होती, उसी प्रकार विना उत्तम :तपश्चरणके कर्मोंका विनाश होना संभव नहीं है। तपश्चरण ही कर्मरूपी धधकती हुई प्रबल अग्निको शांत कर देनेके लिए जलके समान हैं और अशुभ कर्म-रूपी विशाल पर्वत श्रेणीको ध्वस्त करनेके लिए इन्द्रके वज्रके समान है। यह विषयरूपी सर्पोंको वशमें करनेके लिए मंत्रके समान है, विघ्नरूपी हरिणोंको रोकनेके लिए जालके समान और अंधकारको विनष्ट करनेके लिए सूर्य जैसी शक्ति रखता है।

तपश्चरणके प्रभावसे केवल मनुष्य ही नहीं, देव, भवनवासी देव, आदि सभी सेवक बन जाते हैं। सर्प, सिंह, अग्नि शत्रु आदिके भय सर्वथा दूर हो जाते हैं। जिस प्रकार धान्यके बिना खेत; शृंगारके बिना सुन्दरी, कमलोंके बिना सरोवर शोभित नहीं होते, उसी प्रकार तपश्चरणके अभावमें मनुष्य शोभा नहीं देता। इसी तपश्चरणके द्वारा मुनिराज दो तीन भवमें ही कर्म समुदायको नष्टकर मोक्ष-सुख प्राप्त कर लेते हैं। इसका प्रभाव इतना प्रबल है कि अरहंत देव, सबको धर्मोपदेश देनेवाले तथा देव, इन्द्र,नागेन्द्र आदिके पूज्य होते हैं। वे भगवान, उनके नाम को स्मरण करनेवाले तथा जैनधर्मके अनुसार पुण्य संचय करनेवाले सत्पुरुषोंको संसार महासागरसे शीघ्र पार कर देते हैं। जो क्षुधा, पिपासा, आदि अठारह दोषोंसे रहित हो, जो राग द्वेषसे रहित हो; समवशरणका स्वामी तथा संसार सागरसे पार करनेके लिए जहाजके तुल्य हो, उसे देव कहते हैं। बुद्धिमान लोग ऐसे अरहंत देवके चरणोंकी निरंतर उपासना किया करते हैं और उनके पाप क्षण भरमें नष्ट हो जाते हैं। भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा रोग, पापसे मुक्त और स्वर्ग मोक्ष प्रदान करनेवाली है। जो लोग ऐसे भगवानकी पूजा करते हैं, उनके घर नृत्य करनेके लिए इन्द्र भी बाध्य हैं। भगवानके चरण कमलोंकी सेवासे सुन्दर सन्तान, हाव भाव सम्पन्न सुन्दर स्त्रियां तथा समग्र भूमण्डलका राज्य प्राप्त होता है। भगवानकी पूजा शत्रु-विनाशक और शत्रु-संहारक है। यह कामधेनुके सदृश इच्छाओंकी पूर्ति करती हैं।

जो भव्य पुरुष भगवानकी पूजा करते हैं, उनकी सुमेरु पर्वतके मस्तक पर देवों और इन्द्रों द्वारा पूजा होती है। जो 'अर्हद्भ्योनमः' इस प्रकार ऊंचे स्वरमें उच्चारण करते हैं, वे उत्तम तथा यशस्वी होते हैं। परमात्माकी स्तुतिसे पुण्य समुदायकी कितनी वृद्धि होती है, इसका वर्णन करना सर्वथा कठिन है। जो लोग भगवानको निन्दा करते हैं, वे क्रूर जीवोंसे भरे हुए इस संसार रूपी वनमें दुःखी होकर भ्रमण किया करते हैं। वे नीच सदा लोभके वशीभूत होकर यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेतादिकी उपासना करते रहते हैं। मिथ्याचारी मनुष्य धन आदिकी इच्छासे पीपल कुंआ तथा कुल देवियोंकी पूजा करते हैं। जो मुनिराज सम्यक् चारित्रसे सुशोभित हैं और आत्मा एवं समस्त जीवोंको तारनेके लिए तत्पर रहते हैं, वे विद्वानों द्वारा गुरु माने जाते हैं। जिनसे मिथ्या ज्ञानका विनाश हो एवं अधर्मका नाश और धर्मकी अभिवृद्धि होती हो, वे ही गुरु भव्यजीवोंकी सेवाके अधिकारी हैं। माता, पिता, भाई, बंधु किसीमें भी सामर्थ्य नहीं कि इस भवरूपी संसारमें पड़े हुए जीवोंका उद्धार कर सकें। मिथ्याज्ञानसे भरपूर पाखण्डी त्रिकालमें भी गुरु नहीं माने जा सकते। भला जो स्वयं मिथ्या शास्त्रोंमें आसक्त हैं, वह दूसरोंका क्या उपकार कर सकता है। जो भगवान जिनेन्द्रदेवकी दिव्य-वाणीका श्रवण नहीं करते, वे देव अदेव धर्म, अधर्म, गुरु, कुगुरु हित, अहितका कुछ भी ज्ञान नहीं रखते हैं। जो लोग जैन धर्मको भी अन्य धर्मोंकी भांति समझते हैं, वे वस्तुतः लोहेको मणि और अन्धकारको प्रकाश समझते हैं।

जिसने भगवानकी दिव्य-वाणी नहीं सुनी, उसका जन्म ही व्यर्थ है। जिसने जिनवाणीका उच्चारण नहीं किया, उसकी जीभ व्यर्थ ही बनाई गयी। जिसमें तीनों लोकोंकी स्थिति, सप्ततत्वों, नव पदार्थों, पांच महाव्रतोंका वर्णन हो तथा धर्म, अधर्मका स्वरूप बतलाया गया हो, वही विद्वानों द्वारा कही गयी जिनवाणी है। सूर्यके अभावमें जिस प्रकार संसारके पदार्थ दिखाई नहीं देते, ठीक उसी प्रकार जिनवाणीके बिना ज्ञान होना संभव नहीं है। देव, शास्त्र और गुरुका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन मोक्ष मार्गका पाथेय और नर-कादि मार्गोंका अवरोधक है। अतः बुद्धिमान लोग सम्यग्दर्शन का ही ग्रहण करते हैं। यह अज्ञान-तमका विनाशक और मिथ्याचारका क्षय करने वाला है। इसके बिना व्रत शोभायमान नहीं होते। जिस प्रकार देवोंमें इन्द्र, मनुष्योंमें चक्रवर्ती और समुद्रोंमें क्षीरसागर श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त व्रतोंमें सम्य-ग्दर्शन ही श्रेष्ठ है। दरिद्र और भूखा सम्यग्दर्शीको धनी ही समझना चाहिए और उसके विपरीत सम्यग्दर्शन हीन धनीको निर्धन। इसीके प्रभावसे मनुष्योंको सांसारिक संपदायें प्राप्त होती हैं और रोग-शोकादि सब कष्ट दूर होते हैं। सम्यग्दर्शी को भोगोपभोगकी सामग्रियां मिलती हैं तथा सूर्यके समान उनकी कीर्ति प्रकाशित होती है। वे अपने रूपसे कामदेवको भी परास्त करते हैं और उन्हें इन्द्र, चक्रवर्ती आदि अनेक पद प्राप्त होते हैं। उन्हें देवांगनाओं जैसी सुन्दरियां प्राप्त होती हैं और चारों प्रकारके देव उनकी सेवा करते हैं। सम्यग्दर्शनका

ही प्रभाव है कि मनुष्य कर्मरूपी शत्रुओंको नष्ट कर तीनों भवों को पार कर जाता है। जिस स्थान पर देव-शास्त्र और गुरुकी निन्दा होती हो, उसे मिथ्यादर्शन कहते हैं, इस दर्शनके प्रभुत्व से मनुष्यको नरकगामी होना पड़ता है। मिथ्यादर्शनसे जीव टेढ़े, कुबड़े, नकटे गूंगे तथा बहरे होते हैं। उन्हें दरीद्री, होना पड़ता है और उन्हें स्त्री भी कुरूपा मिलती है। वे दूसरोंके सेवक होते हैं और उनकी अपकीर्ति संसार भरमें फैलती है। उन्हें भूत, प्रेत, यक्ष, राक्षस आदि नीच व्यंतर भवोंमें जाना पड़ता है अथवा वे कौआ विल्ली सूअर आदि नीच और क्रूर होते हैं तथा एकेन्द्रिय वा निगोदमें उत्पन्न होते हैं। किन्तु जो जिनालयका निर्माण कराता है वह संसारमें पूज्य और उत्तम होता है, उसकी कीर्ति संसारमें फैलती है। कृषि कुएंसे अधिक जल निकालना, रथ गाड़ी बनाना, घर बनाना कुंआ बनाना आदि हिंसा प्रधान कार्य नीच मनुष्य ही करते हैं। पर जो प्राणियोंकी हिंसाके दोषसे जिनालय बनाने तथा भगवानकी पूजा आदिमें निषेध करते हैं,वे मूर्ख हैं और मृत्युके पश्चात् निगोदमें निवास करते है। जिस प्रकार विषकी छोटी बूंदसे महासागर दूषित नहीं हो पाता,उसी प्रकार पुण्य कार्यमें दोष नहीं लगता। पर खेती आदि हिंसाके कार्यमें दोष अवश्य लगता है, जैसे घड़े भर दूधको थोड़ी सी कांजी नष्ट कर देती है। उस मनुष्यके समग्र पाप नष्ट हो जाते हैं, जो मन वचनकी शुद्धतासे पात्रोंको दान देता है। उसके परिणाम शान्त हो जाते हैं और आगम तथा चारित्रकी वृद्धि होती है। वह

कल्याण, पुण्य और ज्ञान विनयकी प्राप्ति करता है। पात्रोंको दान देनेसे रत्नत्रयादि गुणोंमें प्रेम और लक्ष्मीकी सिद्धि होती है। यहां तक कि आत्म-कल्याण और अनुक्रमसे मोक्ष तककी प्राप्ति होती है। दान देनेसे—ज्ञान कीर्ति, सौभाग्य, बल, आयु कांति आदि समस्त गुणोंकी अभिवृद्धि होती है तथा उत्तम संतान और सुन्दरी स्त्रियां प्राप्त होती हैं। जैसे गाय आदि दूध देनेवाले पशुओंको घास खिलानेसे दूध उत्पन्न होता है, उसी प्रकार सुपात्रोंके दानसे चक्रवर्ती, इन्द्र, नागेन्द्र आदिके सुख उपलब्ध होते है। जो दान दयापूर्वक दीन और दुखियोंको दिया जाता है, उसे भी जिनेन्द्र भगवानने प्रशंसनीय कहा है। उससे मनुष्य पर्याय प्राप्त होता है। पर मित्र राजा,भाट,दास ज्योतिषी वैद्य आदिको उनके कार्यके बदले जो दान दिया जाता है, उससे पुण्य नहीं होता। रोगियोंको सदा औषधि दान देना चाहिए। औषधिके दानसे सुवर्ण जैसे सुन्दर शरीरकी प्राप्ति होती है। वे कामदेवसे सुन्दर और सदा निरोग रहते हैं। इसी तरह जो मनुष्य एकेन्द्रिय आदि जीवोंको अभय दान देता है, उसकी सेवामें उत्तम स्त्रियां रत रहती हैं। इस अभयदानके प्रभावसे गहन वनमें, पर्वतों पर किसी भी हिंसक जानवरका भय नहीं रहता। जो जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा गया हो, धर्मकी शिक्षा देता हो तथा जिसमें अहिंसा आदिका वर्णन हो,वह आर्हत मतमें शास्त्र कहलाता है। जो लोग शास्त्रों को लिखा लिखाकर दान देते हैं, वे शास्त्र पारंगत होते हैं। पर अनेक प्रकारके अनर्थमें रत मनुष्य शस्त्र, लोहा, सोना,

चांदी, गौ, हाथी, घोड़ा आदिका दान करते है, वे नरकगामी होते हैं। शास्त्रदानसे जीव इन्द्र होता है। वे परम देवके कल्याणकोंमें लीन रहते हैं, अनेक देवियां उनकी सेवामें तत्पर रहती हैं और उनकी आयु होती है सागरोंकी। वहांसे वे मनुष्य भवमें आकर स्त्रियोंके भोग भोगते है, बड़े धनी और यशस्वी बनते हैं। वे सदा जिन भगवानकी सेवामें लीन रहते हैं मधुर भाषी होते हैं और दया आदि अनेक व्रतोंको धारण करते हैं। अन्तमें संसारके विषयोंसे विरक्त होकर जिन-दीक्षा ग्रहण कर शास्त्राभ्यासमें लीन होते हैं। उनकी प्रवृत्ति सदा परोपकारमें रहती है। पुनः वे घोर तपश्चरणके द्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर भव्य जीवोंको धर्मोपदेश करते हैं एवं चौदहवें गुणस्थानमें पहुंच कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। उपरोक्त व्रतोंके तुल्य व्रतके पालन करने वाले श्रावकोंको चाहिए कि वे रात्रि-भोजनका सर्वथा त्याग करदें। रात्रि भोजन हिंसाका एक अंग है, पाप की वृद्धि करनेवाला तथा उत्तम गतियोंको प्राप्त करनेमें प्रधान बाधक है। रात्रिमें जीवोंकी अधिक वृद्धि हो जाती है। भोजन में इतने छोटे-छोटे कीड़े मिल जाते है, जो दिखाई नहीं देते। इसलिए कौन ऐसा धार्मिक पुरुष होगा जो रात्रिके समय भोजन करेगा। रात्रिके समय भोजन करनेके पाप स्वरूप जीव को सिंह, उल्लू बिल्ली, काक, कुत्ते, गृद्ध और मांसभक्षी आदि नीच योनियोंमें जाना पड़ता है। जो शास्त्रपारदर्शी व्यक्ति रात्रिभोजनका परित्याग कर देते हैं, वे १५ दिन उपवास करनेका फल प्राप्त करते हैं। ऐसे ही मुनि और श्रावकोंके भेदसे कहे

गये उपरोक्त धर्मोंका जो निरंतर पालन करते हैं, वे ऐहिक, पारलौकिक और अंतमें मोक्षप्राप्तिके अधिकारी अवश्य होते है। भगवान महावीर स्वामीके सदुपदेश सुनकर श्रेणिक आदि अनेक राजाओं और मनुष्योंने व्रत धारण किये और दीक्षा ग्रहण की।

पश्चात् भगवानके आदेशके अनुसार संसार सागरसे पार उतारनेवाले गौतम गणधर भव्यजीवोंको उपदेश देने लगे। मुनिराज गौतम स्वामीने अष्ट कर्मरूपी शत्रुओंके विनाशके हेतु कल्याण दायक, कामाग्निको जलके समान शान्त करके तपश्चरणमें तल्लीन हुए। एक दिन गौतम मुनिराज एकांत प्रासुक स्थानमें उपस्थित थे। वे निश्चल और ध्यानमें मग्न कर्म-नाशका उद्योग कर रहे थे। आरम्भमें ही उन्होंने अधःकरण अपूर्वकरण, अनिवृति करणके द्वारा मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व एवं सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व ये तीन दर्शन मोहनीय प्रकृतियाँ तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध मान, माया लोभ ये चार कषाय, इस तरह सम्यग्दर्शनमें बाधा प्रदान करने वाली इन सातों प्रकृतियोंको नष्ट कर क्षपक श्रेणीमें आरूढ़ हुए। उन्होंने ध्यानके बलसे तिर्यंच आयु, नरकायु और देवायुको नष्ट कर शेष कर्मों का नाश करनेके लिए नवें गुण स्थान प्राप्त किया। स्थावर नाम कर्म, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, तेरन्द्रिय जाति चौइन्द्रिय जाति तिर्यंच जाति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, नरक गति नरक गत्यानुपूर्वी, साधारण आतप उद्योत, निद्रा-अनिद्रा प्रचलाप्रचला, सत्पानगृद्धि, और सुक्ष्म नामकर्म उक्त सोलह

प्रकृतियोंको उन्होंने नौवें गुण स्थानके पूर्वमें नष्ट किया। पुनः अप्रत्याख्यनावरण, क्रोध मान, माया लोभ अष्ट कषायोंको दूसरे अंशमें नष्ट किया और नपुन्सकलिंग, स्त्रीलिंग, हास्य, रति, अरति, शोक, भय जुगुप्सा पुलिङ्ग संज्वलन क्रोध मान-माया समस्त प्रकृतियां नष्ट कीं। संज्वलन लोभ प्रकृति सुक्ष्म सांपराय दशवें गुण स्थानके उपांत्यमें निद्रा प्रचला विनष्ट हुई और इसी गुण स्थानके अंतमें पांचों ज्ञानावरण, चारों दर्शनावरण और पांचों अंतराय कर्म नष्ट किये। उक्त तिरसठ प्रकृतियोंको नष्ट कर गौतम मुनिराज केवलज्ञान प्राप्त कर तेरहवें गुण स्थानमें प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन,अनन्त सुख और अनन्त वीर्य प्राप्त किये। उनके लिये देवों ने गन्धकुटीकी रचना की! जिसमें केवली भगवान विराजमान हुए। उन्हें इन्द्रादिदेव भक्ति पूर्वक नमस्कार करने लगे। समस्त गणधर मुनिराज और राजाओंने गौतम स्वामीकी भक्तिपूर्वक पूजा की और नमस्कार कर अपने अपने स्थानपर बैठे। जिन्हों ने अलोक सहित तीनों लोकोंको देखा है, जिनका विषय समुदाय नष्ट हो चुका है, जो लीला पूर्वक कामदेवको नष्ट कर ब्राह्मण वंशको सुशोभित करनेके लिये मणिके तुल्य हैं,वे केवलज्ञानी भगवान गौतम स्वामी मोक्ष प्रदान करने वाला भव्य ज्ञान देते रहें।

पंचम अधिकार

——:०:——

इसके पश्चात् भगवान गौतम स्वामी भव्यजीवोंको आत्म-ज्ञान प्रदान करने वाली सरस्वतीको प्रकट करने लगे। उनकी दिव्यध्वनिमें प्रकट हुआ कि, भगवान जिनेन्द्रदेवने जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर,निर्जरा और मोक्ष ये सप्ततत्व निरूपित किये हैं। जो अन्तरंग और वहिरंग प्राणोंसे पूर्वभव में जीवित रहेगा, वह जीव है। यह अनादिकालसे स्वयंसिद्ध है। यह जीव भव्य और अभव्य अर्थात् संसारी और सिद्ध भेदसे अथवा सेनी-असेनी भेदसे दो प्रकारका होता हैं। त्रस और स्थावर भेदसे दो प्रकारका होता है। उनमें पृथ्वीकादिक, जलकादिक, अग्निकादिक, वायुकादिक, वनस्पतिकादिक, ये पंच स्थावरोंके भेद हैं तथा दो इन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय ये चार त्रसोंके भेद हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण ये पंचेन्द्रियां है एवं स्पर्श,रस, गंध वर्ण और शब्द उक्त इन्द्रियों के विषय हैं। शंखावर्त पद्मपत्र और वंशपत्र ये तीन प्रकारकी योनियां होती हैं। शंखावर्त योनिमें गर्भधारणकी शक्ति नहीं होती। पद्मपत्र योनिसे तीर्थंकर चक्रवर्ती नारायण, प्रति नारायण, बलभद्र आदि महापुरुष और साधारण पुरुष उत्पन्न होते है, किन्तु वशपत्रसे साधारण मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं। जीवोंके जन्म तीन प्रकारसे होते है—संमूर्च्छन गर्भ और उपपाद एवं सचित्त, अचित्त, सचिताचित, शीत, उष्ण, शीतोष्ण

संवृत, निवृत, संवृत-निवृत ये नव प्रकारकी योनियां हैं। उत्पन्न होते ही जिन पर जरा आती है वे जरायुज और जिनपर जरा नहीं आती वे अंडज और पोत ये गर्भसे उत्पन्न होते है। इतर सब जीव संमूर्छन उत्पन्न होते हैं। योनियोंके ये नव भेद जिनागममें संक्षेपसे बतलाये गये है, अन्यथा यदि विस्तार पूर्वक कहे जांय तो चौरासी लाख होते हैं। नित्य निगोद, इतर निगोद, पृथ्वीकादिक, जलकादिक अग्निकादिक वायुकादिक इनकी सात सात लाख योनियां है। इन योनियोंमें जीव सदा परिभ्रमण किया करता है। वनस्पति जीवोंकी दश लाख योनियां हैं। दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय; चौइन्द्रिय। इनकी दो-दो लाख योनियां हैं, जिनमें ये जीव जन्म मृत्युके दुःख भोगा करती हैं। चार लाख योनियां नारकीयों की हैं जो शीतोष्णके दुःख भोगती हैं। वे शारीरिक मानसिक और असुर कुमार तथा देवोंके दिये हुए पाँच प्रकार के दुःख भोगती हैं। चार लाख योनियां तिर्यचों की है वे मारन छेदन आदि के कष्ट भोगती हैं। चौदह लाख योनियां मनुष्यों की हैं, वे इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोगके कष्ट झेलती हैं। इनके अतिरिक्त देवोंकी चार लाख योनियां है वे भो मानसिक दुःख भोगनेके लिए वाध्य हैं। अर्थात् हे राजन्! संसारमें कहीं भी सुख नहीं हैं। गर्भसे उत्पन्न होने वाले स्त्री पुरुष, स्त्रीलिंग पुलिङ्ग और नपुंसक लिंगके धारण करने वाले होते हैं। पर देव दो लिंगोंको अर्थात् स्त्रीलिंग और पुलिङ्ग को ही धारण करने वाले होते हैं। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय सम्मूर्छन पंचे-

न्द्रिय तथा नारकी ये सब नपुन्सक ही होते हैं। एकेन्द्रियं आदिके अनेक संस्थान होते हैं, पर नारकीयोंका हुंडकं संस्थान ही होता है। देव और भोगभूमियोंका समचतुरस्त्र संस्थान होता है, पर मनुष्य और तिर्यंचोंके छहों संस्थान होते हैं। देव और नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति (सबसे अधिक आयु) तीस सागरकी होती है, व्यतंर ज्योतिषियोंकी एक पल्य तथा भवनवासियोंकी एक सागर की। वनस्पतियोंकी स्थिति दश हजार वर्ष और सूक्ष्म वनस्पतियोंकी अन्तमुहुर्त है। पृथ्वीकादिक जीवोंकी बाइस हजार वर्ष, जलकादिक जीवोंकी सात हजार वर्ष और अग्निकादिक जीवोंकी तीन दिनकी उत्कृष्ट स्थिति है। जिनागममें द्विन्द्रिय जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति बारह वर्ष और तेइन्द्रियकी उन्वास दिनकी बताई गयी है। चतुरेन्द्रियकी छः मासकी और पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति तीन पल्यकी है एवं इन्हींकी जघन्य स्थिति अन्तर मुहूर्त्तको होती है। जिनागममें धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और काल ये छः द्रव्य बतलाये गये हैं। इनमेंसे धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल द्रव्य अजीव भी है और काय भी हैं। पुद्गल द्रव्य रूपी है और बाकी सबके सब अरूपी हैं और द्रव्य नित्य हैं। जीव और पुद्गल क्रियाशील हैं और चारद्रव्य क्रिया रहित हैं। धर्म अधर्म और एक जीवके असंख्यात प्रदेश हैं। पुद्गलोंमें संख्यात, असंख्यात और अनन्त तीनों प्रकारके प्रदेश हैं। आकाशके अनन्त प्रदेश हैं और कालका एक-एक प्रदेश है। दीपकके प्रकाशकी भांति जीव

की भी संकोच होने और विस्तृत होनेकी शक्ति है। अतएव वह छोटे-बड़े शरीरमें पहुंच कर शरीरका आकार धारण कर लेता है। शरीर मन वचन और श्वासोच्छ्वासके द्वारा पुद्गल जीवोंका उपकार करता है। जिस प्रकार मत्स्यके तैरनेके लिए जल सहायक होता है तथा पथिकको रोकनेके लिए छाया सहायक होती है, उसी प्रकार जीवके चलनेमें धर्मद्रव्य सहायक होता है और अधर्म ठहरनेमें सहायक होता है। द्रव्य परिवर्तन के कारणको काल कहते हैं। वह क्रिया परिणमन, परत्वापरत्व से जाना जाता है। आकाश द्रव्य सब द्रव्योंको अवकाश देता है। द्रव्यका लक्षण सत् है। जो प्रतिक्षण उत्पन्न होता हो, ज्योंका त्यों बना रहता हो, वह सत् है। सर्वज्ञदेवने ऐसा बतलाया है कि, जिसमें गुण पर्याय हों अथवा उत्पाद, व्यय ध्रौव्य हों, उसे द्रव्य कहते हैं। वचन और शरीरकी क्रिया योग है। वह शुभ अशुभ दो प्रकारका होता है। मन वचन कायकी शुभ क्रिया पुण्य है और अशुभ क्रिया पाप है। मिथ्यात्व, अविरत योग और कषाओंसे आने वाले कर्मको आस्रव कहते हैं। इनमें मिथ्यात्व पांच, अविरत बारह, योग पन्द्रह प्रकारके और कषायके पच्चीस भेद होते हैं। मिथ्यात्वके पांच भेद एकान्त, विपरीत विनय, संशय और अज्ञान हैं। छः प्रकारके जीवोंकी रक्षा न करना, पंचेन्द्रिय तथा मनको वशमें न करना आदि बारहभेद श्री सर्वज्ञदेवने बतलाये हैं। सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग ये चार मनोयोगके भेद हैं। काम योगके सात भेद-क्रमसे औदारिक, औदारिक-

मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक-मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्माण हैं। कषाय वेदनीय और नौ-कषाय वेदनीय ये कषायके दो भेद हैं। इनमें अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ और संज्वलन क्रोध मान माया लोभ ये सोलह प्रकारके भेद कषाय वेदनीय के हैं। और हास्य, रति, अरति, शोक, भय जुगुप्सा पुलिङ्ग स्त्रीलिङ्ग नपुन्सक लिङ्ग ये नौ भेद नौ कषाय वेदनीय के हैं। इस प्रकार कषायके कुल पच्चीस भेद होते हैं। जिस प्रकार समुद्रमें पड़ी हुई नौकामें छिद्र होजाने से उसमें पानी भर जाता है, उसी प्रकार मिथ्यात्व, अविरत आदिके द्वारा जीवोंके कर्मोंका आस्रव होता रहता है। यह सम्बन्ध अनादिकालसे चला आरहा है। कर्मोंके उदयसे ही जीवोंमें रागद्वेष रूप के भाव उत्पन्न होते हैं। रागद्वेष रूप परिमाणोंसे अनन्त पुद्गल आकर इस जीवके साथ सम्मिलित हो जाते हैं। पुनः नये कर्मोंका बन्ध आरम्भ होता है। इस प्रकार कर्म और आत्माका सम्बन्ध अनादिकालसे है। जिनागममें प्रकृति, स्थिति अनुभाग और प्रदेश ये बंधके चार भेद बतलाये गये हैं। ज्ञाना-वरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये प्रकृतिके आठ भेद हैं। प्रतिमाके ऊपर पड़ी हुई धूल जिस प्रकार प्रतिमाको ढंक लेती है, उसी प्रकार ज्ञाना-वरण कर्म ज्ञानको ढंक लेती है। मति ज्ञानावरण, श्रुतज्ञाना-वरण, अवधि ज्ञानावरण, मनःपर्यय ज्ञानावरण, और केवल-

ज्ञानावरण ये पांच भेद ज्ञानावरणके होते हैं। आत्माके दर्शन गुणको रोकने वालेको दर्शनावरण कहते हैं। वह नव प्रकार का होता है—चक्षुर्दर्शनावरण अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधि दर्शनावरण, केवल दर्शनावरण निद्रा निद्रानिद्रा प्रचला प्रचलाप्रचला स्त्यान गृद्धि। दुःख और सुखको अनुभव कराने वाले कर्मको वेदनीय कहते हैं। वह दो प्रकारका होता है—साता वेदनीय और असाता वेदनीय। मोहनीय कर्मका स्वरूप मद्य वा धतूरा की तरह होता है। वह आत्माको मोहित कर लेता है। उसके अठाइस भेद होते हैं—अनन्तानुबन्धी, क्रोध मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण, क्रोध, मान,माया,लोभ, प्रत्याख्यानावरण, क्रोध, मान माया, लोभ संज्वलन क्रोध मान माया लोभ हास्य रति अरति, शोक भय जुगुप्सा स्त्री, पुलिंग नपुन्सक लिङ्ग मिथ्यात्व सम्यक्मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व। जिस प्रकार सांकलमें बंधा हुआ मनुष्य एक स्थान पर स्थिर रहता है, उसी प्रकार इस जीवको मनुष्य तिर्यंच आदिके शरीरमें रोक कर रखे उसे आयु कर्म कहते हैं। आयु कर्मके उदयसे ही मनुष्यादि भव धारण करना पड़ता है। यह कर्म चार प्रकारका होता है—मनुष्यायु तिर्यंचायु, देवायु और नरकायु। जो अनेक प्रकारके शरीरकी रचना करे; उसे नाम कर्म कहते हैं। उसके तिरानवे भेद हैं—

देव, मनुष्य, तिर्यंच, नरक ये चार गतियां एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, ते इन्द्रिय,चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय ये पांच जातियां। औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण, पांचबंधन, पंच

संघात, समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, स्वातिक, कुब्जक, वामन, हुंडक, ये छः संस्थान, वज्रवृषभ, नाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच कीलक, असंप्राप्तासृपाटिक ये छः संहनन, स्पर्श आठ, रस पांच, गंध दो, वर्ण पांच नरक, तिर्यंच मनुष्य देवगत्यानुपूर्वी अगुरु लघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत उच्छ्वास विहायो गति दो, प्रत्येक साधारण त्रस, स्थावर, सुभग, दुर्भग, दुस्वर, उस्वर, शुभ, अशुभ, सूक्ष्म, स्थूल, पर्याप्ति अपर्याप्ति स्थिर, अस्थिर आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति अयश कीर्ति, तीर्थंकर। जिस प्रकार कुम्हार छोटे बड़े हर प्रकारके वर्तन तैयार करता है, उसी प्रकार ऊंच नीच गोत्रोंमें जो उत्पन्न करे, उसे गोत्रकर्म कहते हैं। उसके ऊंच गोत्र और नीच गोत्र दो भेद होते हैं। दान आदि लब्धियोंमें जो विघ्न उत्पादन करता है, वह अन्तराय है। उसके पांच भेद बतलाये गये हैं—दानांतराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय वीर्यान्तराय। विद्वानोंने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ा कोडी सागरकी बतलाई है और आयु कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तैंतिस सागरकी। किन्तु इनकी जघन्य स्थिति वेदनीयकी वारह मुहूर्त नाम और गोत्रकी आठ और शेष कर्मोंकी अन्तर्मुहुर्त है। यह जीव शुभ परिणामोंसे पुण्य और अशुभ परिणामोंसे पाप संचय करता है। शुभ आयु, शुभ नाम, शुभ गोत्र और सातावेदनीय पुण्य है और अशुभ आयु, अशुभ नाम, अशुभ गोत्र, असाता वेदनीय ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय पाप हैं। पाप

प्रकृतियोंका परिपाक विषके तुल्य होता है और पुण्य प्रकृतियों का अमृतके समान। ज्ञानके विरुद्ध कर्म करनेसे ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मोंका बन्ध होता है। जीवोंपर दया करने, दान देने, राग पूर्वक संयम पालन करने नम्रता और क्षमा धारण करनेसे साता वेदनीय कर्मका बंध होता है। दुख, शोक, वध, रोना आदि ये कर्म स्वयं करने या दूसरोंसे करानेसे असाता-वेदनीय कर्मका आस्रव होता है। भगवानकी निन्दा, शास्त्रकी निन्दा, तपश्चरणकी निन्दा, गुरुकी निन्दा, धर्मकी निन्दा आदिसे दर्शन मोहनीय कर्मका बन्ध होता है। कषायोंके उदय से तीव्र परिणाम होते हैं और उसके सकल विकल दोनों प्रकार के चरित्र-मोहनीयका बन्ध होता हैं। रौद्रभव धारण करने-वाला, पापी, लोभी, शीलव्रतसे रहित मिथ्यादृष्टि नरकायुका बन्ध करता है। और शील रहित जिनमार्गका विरोधी पापा-चारी जीव तिर्यंच आयुका बंध करता है। परन्तु जो मध्यम गुण धारण करनेवाला, दानी और मन्दकषायी है, वह मनुष्य आयुका बन्ध कर लेता है। देशव्रती महाव्रती अकाम निर्जरा करने वाला सम्यग्दृष्टि जीव देवायुका बन्ध करता है। कुटिल मायाचारी जीव अशुभ नामकर्मका बन्ध करता है और इसके विपरीत मन वचन कायसे शुद्ध जीव शुभ नामकर्मका बन्ध करता है। दुर्भाग्यको प्रकट करनेसे दूसरोंकी निन्दा करनेसे नीच गोत्रका बंध और अपनी निन्दा और दूसरेकी प्रशंसा करनेसे उच्च गोत्रका बंध होता हैं। जो भगवान अर्हन्तदेवकी पूजासे विमुख हिंसा आदिमें रत रहता हैं, वह अंतराय कर्म

का बंध करता है, उसे इष्ट पदार्थोंकी प्राप्ति नहीं होती। गुप्ति, समिति धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषह, जप, और चारित्रसे आश्रव सुनकर महासंवर होता है। यह आत्मा संवर होनेसे अपने लक्ष्य (मोक्ष) पर पहुंच जाता है। बारह प्रकारके तपश्चरण; धर्मरूपी उत्तम बल,और रत्न भयरूपी अग्निसे यह जीव कर्मोंकी निर्जरा करता है। निर्जराके दो भेद हैं—सविपाक अविपाक। तप और ध्वनिके द्वारा विना फल दिये ही जो कर्म नष्ट हो जाते हैं, उसे अविपाक निर्जरा कहते हैं और अविपाक निर्जरा वह है जो कर्मोंके झड़ जानेसे होती है। समस्त कर्म जब नष्ट हो जाते हैं तब मोक्ष मिलता है। मुक्त होने पर यह जीव ऊपरको गमन करता है। यह धर्मास्तिकाय अर्थात् लोकाकाश के अन्त तक जाता हैं और आगे धर्मास्तिकाय न होनेसे वहीं रुक जाता है।

इस प्रकार भगवान गौतम स्वामीकी दिव्यवाणी द्वारा सप्ततत्वोंका स्वरूप सुनकर महाराज श्रेणिक प्रार्थना करने लगे। वे कहने लगे—प्रभो आप संदेह रूपी अन्धकारको दूर करनेके लिए सूर्यके तुल्य हैं। मैं आपके श्रीमुखसे काल निर्णय, भोगभूमिका स्वरूप, कुलकरोंकी स्थिति, तीर्थंकरोकी उत्पत्ति, उनके उत्पन्न होनेके मध्यका समय, शरीरकी ऊंचाई चिन्ह, जन्म नगर, उनके माता-पिताओंके नाम, चक्रवर्ती नारायण, प्रतिनारायण, रुद्र, नारद कामदेव, आदि महापुरुषोंके नाम नरक स्वर्गों में नारकी और देवोंकी स्थिति और उनकी ऊचाई लेश्या आदि बातें सुननेकी आशा रखता हूं। कृपा कर इन

सब बातोंको बतलाइये। प्रत्युत्तरमें भगवान श्री गौतम स्वामी कहने लगे—तुम मनको स्थिर कर सुनो। ये विषय संसारको सुख प्रदान करने वाले हैं।

बीस कोड़ा कोड़ी सागरका एक कल्पकाल होता है, उसमें दश, दश कोड़ाकोड़ी सागरके अवसर्पिणी काल और उत्सर्पिणी काल होते हैं। इन दोनों कालोंमें प्रत्येकके छः भाग होते हैं—प्रथम सुषमा सुषमा द्वितीय सुषमा, तृतीय सुषमा दुषमा चतुर्थ दुषमा सुषमा पंचम दुःषमा और षष्ठम दुःषमा, दुःषमा होते हैं। उत्सर्पिणीके काल ठीक इसके विपरीत हैं। इनमें प्रथम काल कोड़ाकोड़ी सागरका है। द्वितीय तीन कोड़ा कोड़ी—तृतीय दो कोड़ा कोड़ी, और चतुर्थ ब्यालिस हजार वर्ष कम एक कोड़ा कोड़ी सागरका है। पंचम इक्कीस हजार वर्षका और षष्ठम भी एक्कीस हजार वर्षका होता हैं, ऐसा जिनागम जानने वाले आचार्य कहते हैं। उपरोक्त पूर्वके तीन कालोंमें भोगोपभोगकी सामग्रियां कल्पवृक्षोंसे प्राप्त होती हैं, अतः उक्त तीनों कालोंको भोगभूमि कहते हैं। प्रथम कालमें जीवोंकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्य; दूसरेमें दो पल्य और तीसरेमें एक पल्यकी होती है। इसे भी उत्तम, मध्यम, जघन्य भोगभूमिके अनुरूप ही समझना चाहिए। पूर्व कालके आरंभमें वहांके मनुष्य ६ हजार धनुष, दूसरे कालके आरंभमें चार हजार धनुष, और तीसरेके प्रारम्भमें दो हजार धनुष, ऊंचे होते है। भोगभूमिमें उत्पन्न स्त्री-पुरुषोंके शरीर का रंग पूर्व कालमें सूर्यकी प्रभाके समान, दूसरे कालमें चन्द्रमा

के और तीसरे कालमें नीलवर्णका होता है। वहांके स्त्री पुरुष प्रथम कालमें वेरके समान, द्वितीय कालमें वहेरेके समान और तृतीय कालमें आंवलेके वरावर भोजन करते हैं। वहां तीनों कालोंमें वस्त्रांग, दीपांग गृहांग, ज्योतिरंग, मालांग, भूषणांग, भोजनांग, भाजनांग, वाद्यांग और माद्यांग जातिके कल्पवृक्ष होते हैं। तीनों कालोंके स्त्री-पुरुष सुलक्षणोंसे युक्त और क्रीड़ा रत रहते हैं। उनकी तृप्ति कल्पवृक्ष सदा किया करते हैं। वहांके तिर्यंच भी तदनुरुप ही होते हैं। जो लोग उत्तम पात्रोंको शुभ दान देते हैं, वे भोगभूमिमें उत्पन्न होकर इन्द्रके समान सुख भोगनेके अधिकारी होते हैं। जिस समय अवसर्पिणी कालका अन्त होरहा था, पल्यका आठवां भाग वाकी था और कल्पवृक्ष नष्ट हो रहे थे, उस समय कुलकर उत्पन्न हुए थे। उनके नाम क्रमसे १४ प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहन चक्षुष्मान, यशस्वान, अभिचन्द्र, चन्द्राभ; मरुदेव; प्रसेनजित और नाभिराय थे। इनमें से सुख प्रदान करनेवाले नाभिरायकी आयु एक करोड़ वर्ष थी और उन्होंने उत्पन्न होनेके समय ही नाभि-काटनेकी विधि वताई थी। इस प्रकार सभी कुलकर अपने २ नामके अनुसार गुण धारण करनेवाले थे। वे एक एक पुत्र उत्पन्न कर तथा लोगोंको सद्‌वुद्धि दे स्वर्ग सिधार गये। पर तीसरे कालमें जव तीन वर्ष साढे आठ महीने अधिक चौरासी लाख वर्ष वाकी थे, उस समय युग्मधर्मको दूर करनेवाले मति, श्रुत, अवधिज्ञानसे सुशोभित त्रिलोकके स्वामी, तीनों लोकोंके इन्द्रों द्वारा पूज्य

श्री ऋषभदेव तीर्थंकर उत्पन्न हुए थे। श्री ऋषभदेव अजित नाथ, शंभव नाथ, अभिनन्दन; सुमतिनाथ, पद्मप्रभ सुपार्श्व-नाथ; चन्द्रप्रभ, पुष्प दन्त, शीतल नाथ, श्रेयांस नाथ, वासु-पूज्य, विमल नाथ, अनन्त नाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुंथु-नाथ, अर नाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत नाथ, नमी नाथ, नेमि-नाथ, पार्श्वनाथ, और वर्द्धमान ये चौवीस तीर्थंकर चौथे-कालमें उत्पन्न हुए। ये सभी तीर्थंकर कामदेवको परास्त करनेवाले और भव्यजीवोंको संसार सागरसे पार उतारने वाले थे। जब तीसरे कालमें तीन वर्ष साढ़े अठारह महीने बाकी रहे, तब श्री महावीर स्वामी मोक्ष गये थे। श्री ऋषभ-देवकी आयु चौरासी लाख पूर्व, श्री अजितनाथकी बहत्तर लाख पूर्व, श्री शंभवनाथकी साठ लाख पूर्व, श्री अभिनन्दन-नाथकी पचास लाख पूर्व, श्री सुमतिनाथकी चालीस लाख पूर्व, श्री प्रभुनाथकी तीस लाख पूर्व, श्री सुपार्श्वनाथकी बीस लाख पूर्व, श्री चन्द्रप्रभकी दश लाख पूर्व, श्री पुष्प दन्तकी दो लाख पूर्व, श्री शीतलनाथकी एक लाख पूर्व, श्री श्रेयांस नाथकी चौरासी लाख पूर्व, श्री वासुपूज्यकी बहत्तर लाख वर्ष, श्री विमल नाथकी साठ लाख वर्ष श्री अनन्त नाथकी तीस लाख वर्ष, श्री धर्मनाथकी दश लाख वर्ष, श्री शान्ति-नाथकी एक लाख वर्ष, श्री कुंथुनाथकी पंचानवे हजार वर्ष, श्री अरनाथकी चौरासी हजार वर्ष, श्री मल्लिनाथकी पचपन हजार वर्ष, श्री मुनिसुव्रत नाथकी तीस हजार वर्ष, श्री नमि-नाथकी दश हजार वर्ष, श्री नेमिनाथकी एक हजार वर्ष, श्री

पार्श्वनाथकी सौ वर्ष और श्री वर्द्धमानकी ७२ वर्षकी आयु थी। श्री ऋषभदेवके मोक्ष जानेके पश्चात् पचास लाख करोड़ सागर व्यतीत होने पर श्री अजित नाथ उत्पन्न हुए थे। उनके मोक्षके पश्चात् तीस लाख करोड़ सागर बीत जाने पर श्री शंभव नाथ उत्पन्न हुए थे। इनके मोक्षके बाद दश लाख करोड़ सागर बीतने पर अभिनन्दन नाथ हुए। इनके मोक्ष जानेके पश्चात् नव लाख करोड़ सागर व्यतीत होने पर श्री सुमति नाथ उत्पन्न हुए थे। इनकी सिद्धिके नब्बे हजार करोड सागर व्यतीत होनेके बाद पद्मप्रभ उत्पन्न हुए थे। इनके मोक्ष के नौ हजार करोड सागर बीतनेपर श्री सुपार्श्व नाथ हुए थे। इनके पश्चात् नव सौ करोड़ सागर बीतने पर श्री चन्द्रप्रभ हुए पुनः नब्बे करोड़ सागर व्यतीत होने पर श्री पुष्पदंत हुए थे। इसी प्रकार नौ करोड़ सागर बीत जाने पर श्री शीतल नाथ उत्पन्न हुए थे। इनके मोक्षके बाद सौ सागर छयासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम एक करोड़ सागर बीत जाने पर श्री श्रेयांस नाथकी उत्पत्ति हुई थी। इनके बाद चौशठ सागर बीत जाने पर श्री विमल नाथ हुए थे। इनके बाद नौ सागर व्यतीत होने पर श्री अनन्त नाथ हुए थे। श्री अनन्त नाथके मोक्ष जानेके बाद चार सागर बीत जानेके बाद श्री धर्मनाथ हुए थे। इनके पश्चात् पौन पल्य कम तीन सागर व्यतीत होने पर श्री शांतिनाथ हुए थे। इनके पश्चात् आधा पल्य बीतने पर श्री कुंथुनाथ हुए थे। इनके पश्चात् एक हजार करोड़ वर्ष कम चौथाई पल्य व्यतीत होने पर श्री अरनाथ हुए थे॥

एक हजार करोड़; दो हजार वर्ष बीतने पर श्री मल्लिनाथ और उनके मोक्षके चौवन लाख वर्ष बीत जाने पर श्री मुनिसुव्रत हुए थे। ऐसे ही श्री मुनिसुव्रतके मोक्षके पश्चात् ६ लाख वर्ष वीत जाने पर श्री नमीनाथ हुए थे। इनके वाद पांच लाख वर्ष व्यतीत होने पर श्री नेमिनाथ उत्पन्न हुए। इनके तिरासी हजार सातसौ वर्ष व्यतीत होने पर श्री पार्श्वनाथ अवतरित हुए थे। और इनके ढ़ाईसौ वर्ष वीत जाने पर श्रीवर्द्धमान स्वामीका आविर्भाव हुआ थो। क्रमसे तीर्थंकरोके शरीरकी ऊंचाई पांचसौ धनुप, चारसौं पचास धनुष, चारसौ धनुष, तीनसौ पचास धनुष, तीनसौ धनुष, दो सौ पचास धनुप, दो सौ धनुष, एकसौ पचास धनुप, सौ धनुष, नव्वे धनुष, अस्सी धनुष, सत्तर धनुष, साठ धनुष, पचास धनुष, चालिस धनुष, पैतीस धनुप, तीस धनुष, पच्चीस धनुष, वीस धनुष, पंद्रह धनुष, दश धनुष, नव हाथ और सात हाथकी थी। चौवीस तीर्थंकरोंमें श्री पद्मप्रभ और वासुपूज्यका वर्ण लाल था, श्री नेमिनाथ और मुनिसुव्रत श्यामवर्णके थे, सुपार्श्व नाथ और पार्श्वनाथ हरित वर्णके तथा अन्य सोलह तीर्थंकरोंका वर्ण तपाये हुए स्वर्णके समान था। क्रमसे—वैल, हाथी, घोड़ा, वंदर, चकवा, कमल, स्वस्तिक, चन्द्रमा, मगर, वृक्ष, गैंडा, भैंसा, शूकर, सेही, वज्र, हरिण, वकरा, मछली, कलश, कछवा, नील कमल शंख, सर्प, और सिंह ये इनके चिन्ह हैं। अयोध्या कौशाम्बी काशी, चन्दपुर काकंदी भद्रपुर, सिंहपुर, चंपापुर

कंपिला, अयोध्या रत्नपुर हस्तिनापुर। मिथिला राजगृह मिथिला, सौरीपुर वाराणसी कुंडपुर ये क्रमसे चौबीस तीर्थंकरोंकी जन्मभूमियां हैं। श्री वासुपूज्य मल्लिनाथ, नेमिनाथ पार्श्वनाथ और वर्द्धमान ये पांच तीर्थंकर कुमार अवस्थामें ही दीक्षित हुए थे, अर्थात् बाल ब्राह्मचारी थे अन्यान्य तीर्थंकर राज्य करके दीक्षित हुए थे। तीन तीर्थंकर—श्री ऋषभदेव वासुपूज्य और नेमिनाथ पद्मासनसे मोक्ष गये हैं बाकी तीर्थंकर खड्गासनसे। श्री ऋषभदेव चौदह दिनों तक योग निरोध कर, श्री वर्द्धमान स्वामी दो दिनों तक योग निरोधकर तथा अन्य बाइस तीर्थंकर एक-एक मास तक योग निरोध कर मोक्ष पधारे थे। ऋषभदेव कैलाशसे, श्री वासुपूज्य, चम्पापुरसे श्री नेमिनाथ गिरनार पर्वतसे, श्री वर्द्धमान स्वामी पावापुरसे तथा बाकी बीस तीर्थंकर सम्मेद शिखरजीसे मोक्ष पधारे थे। क्रमसे चौबीस तीर्थंकरोंके पिताओंके नाम ये हैं—श्री नाभिराज, जितामित्र, जितारि, संवर राय, मेघप्रभ, धरण स्वामी सुप्रतिष्ठ महासेन, सुग्रीव, दृढ़रथ, विष्णुराय, वसुपूज्य, कृतवर्मा, सिंहसेन भानुराय विश्व सेन, सूर्य प्रभ सुदर्शन कुंभराय सुमित्रनाथ विजय रथ समुद्र विजय अश्वसेन, और सिद्धार्थ तथा माताओंके—श्री मरुदेवी, विजयादेवी, सुसेना देवी, सिद्धार्था देवी, सुलक्ष्मणा देवी, रामादेवी, सुनन्दा देवी, विमला देवी, विजया देवी, श्यामा देवी, सुकीर्ति देवी, (सर्वयशा देवी) सुव्रता देवी, ऐरा देवी रमा देवी, सुमित्रा देवी, ब्राह्मणी देवी, पद्मावती देवी, विजया देवी, शिवा देवी, वामा देवी, त्रिशला

देवी नाम हैं। ये भी क्रमसे मोक्ष प्राप्त करेंगी। ऐसा सर्वज्ञ देव ने कहा है।

भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, सुभूम, महापद्म, हरिषेण जय और ब्रह्मदत्त ये द्वादश चक्रवर्तियोंके नाम हैं। ये भरत क्षेत्रके छः खण्डोंके नौ निधि और चौदह रत्नोंके स्वामी होते हैं। अनेक देव और राजा इनके चरण कमलोंकी सेवामें संलग्न रहते हैं। चक्रवर्तियोंके पास रहने वाली नौ निधियोंके ये नाम हैं—पांडुक, माणव, काल, नैःसर्प, शंख, पिंगल, सर्वरत्न, महाकाल और पद्म तथा चक्र, तलवार काकिणी, दण्ड, छत्र, चर्म, पुरोहित गृहपति, स्थपति, स्त्री हाथी मणि, सेनापति घोड़ा ये चौदह रत्न हैं। उक्त बारह चक्रवर्तियोंमें सूभूम और ब्रह्मदत्तको नरककी प्राप्ति हुई थी, मघवा और सनतकुमार स्वर्ग गये और अन्य आठ चक्रवर्तियों को मोक्षकी प्राप्ति हुई। इनके होनेका समय इस प्रकार है—

प्रथम चक्रवर्ती श्री ऋषभदेवके समयमें दूसरा अजितनाथके समयमें तीसरे और चौथे ये दो श्री धर्मनाथ और शान्तिनाथ के मध्यकालमें हुए थे। पांचवें शान्तिनाथ थे और छवें कुंथु-नाथ थे और सातवें अरनाथ थे। आठवां चक्रवर्ती अरनाथ और श्री मल्लिनाथके मध्यमें हुआ था नौवां मल्लिनाथ और सु-व्रतके मध्यमें, दशवां सुव्रतनाथ और नेमिनाथके मध्यकालमें ग्यारहवां नमिनाथ और नेमिनाथके मध्य कालमें तथा बारहवां चक्रवर्ती नेमिनाथ और श्री पार्श्वनाथके मध्यकालमें हुआ।

अश्वग्रीव, तारक, मेरु निशुंभ मधुकैटभ, वलि प्रहरण

(प्रहलाद) रावण, जरासंध ये नव नारायणोंके नाम तथा त्रिपृष्ठ द्विपृष्ठ स्वयंभू पुरुषोत्तम प्रतापी नरसिंह पुंडरीक, दत्त लक्ष्मण, कृष्ण ये नव प्रति नारायणोंके नाम है। नारायण दोनों ही अर्ध चक्रवर्ती होते हैं। ये निदानसे उत्पन्न होते हैं। अतएव नरक गामी होते हैं। विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, स्वयंप्रभ, आनन्दी, नन्द मित्र रामचन्द्र और बलदेव ये नव बलभद्र है। इनकी उत्पत्ति निदान रहित होती है अतः ये जिन दीक्षा धारण करते है ये काम जीत और ऊर्ध्व गामी होकर स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त करते हैं। भीमवली, जितशत्रु रुद्र (महादेव) विश्वानल सुप्रतिष्ठ, अचल, पुण्डरीक, अजित धर, जितनाभि, पीठ सात्यक ये ग्यारह रुद्र हैं। ये ग्यारहवें गुण स्थानमें गिरकर नर्कमें ही गये हैं।

भीम, महाभीम, रुद्र, महारुद्र काल, महाकाल, उर्मख नर-मुख, उन्मुख, ये नौ नाम नारकियोंके हैं। इनकी आयु भी ना-रायणोंकी भांति कही गयी है।

वाहुवली, अमित तेज, श्रीधर, शान्तभद्र, प्रसेनजित, चन्द्रवर्ण, अग्निमुक्त, सनत्कुमार, वत्सराज, कनक प्रभ, मेघवर्ण शान्तिवली, सुदर्शन (वसुदेव) प्रद्युम्न, नागकुमार श्रीपाल, जंबू स्वामी ये चौबीस काम देवोंके नाम हैं। चौबीस तीर्थंकर, वारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ प्रति नारायण नौ बलभद्र ये तिरसठ शलाका पुरुष तथा चौबीस कामदेव नौ नारद, चौबीस तीर्थंकरोंकी माताएं चौदह कुलकर ग्यारह रुद्र ये एक सौ उनहत्तर महापुरुष कहलाते हैं। इनमेंसे कितने ही धर्मके प्रभाव

से मोक्षगामी हुए और आगे होंगे । राजन्! यह बात सर्वथा सत्य है। श्रेणिक ! यह तो दुषम-सुषम कालका स्वरूप बतलाया, अब दुषम कालका स्वरूप कहता हूं, सुन। जब वर्द्धमान स्वामी मोक्ष पधारेंगे, उस समय, सुरेन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्र सब उनका कल्याणोत्सव सम्पन्न करेंगे। उस कालमें धर्मकी प्रवृति होती रहेगी। किन्तु जब केवली भगवानका धर्मोपदेश बन्द हो जायगा, तब उस समयके मनुष्य दुष्ट और अधर्मरत होंगे। वे क्रूर तथा प्रजाको कष्ट देने वाले होंगे। उनका हृदय सम्यग्दर्शनसे शून्य होगा, हिंसा रत होंगे झूठ बोलेंगे एवं ब्रह्म-चर्यसे सर्वथा रहित होंगे। वे क्रोधी, मायाचारी, परस्त्री लोलुपी, परोपकारसे रहित और जैन धर्मके कट्टर विरोधी होंगे। मांस, मद्य, मधुका सेवन करने वाले, विवादी इष्ट वियोगी, अनिष्ट संयोगी और कुबुद्धि धारण करने वाले होंगे। उस समय उनके पाप कर्मोंके उदयसे सदा युद्ध होते रहेंगे। धान्य कम होगा और यज्ञोंमें गोवध करने वाले पतित दूसरों को भी पतित करते रहेंगे। पंचमकालके आरंभकी ऊंचाई सात हाथकी होगी, पर घटते २ वह दो हाथकी रह जायगी। आरंभ के मनुष्योंकी आयु एक सौ चौवीस वर्षकी होगी पर वह भी अन्तमें वीस वर्षकी हो जायगी। दुषम-दुषम कालमें शरीरकी ऊंचाई एक हाथकी होगी और आयु केवल बारह वर्षकी रह जायगी, ऐसा जिनेन्द्र भगवानने कहा है। उस कालके लोग सर्पवृत्ति धारण कर अनेक कुकर्म करेंगे। वे सर्वथा धनहीन और स्थानहीन होंगे। उनमें आचरणकी प्रवृत्ति नहीं रहेगी और

पशुओंकी तरह गुफाओंमें रह कर जीवन व्यतीत करेंगे। अर्थ, धर्म, काम और मोक्षकी प्रवृत्ति उनमें नहीं रहेगी। वे वनस्पति आदि खाकर जीवन-निर्वाह करेंगे। इसके अतिरिक्त वे विवाह संस्कारसे भी रहित होंगे। वे अंगसे कुरूप होंगे। जिस तरहसे कृष्ण पक्षमें चन्द्रमाका प्रकाश कमता जाता है और शुक्ल पक्षमें उसकी अभिवृद्धि होती है, उसी प्रकार अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीकालमें मनुष्योंकी आयु शरीर प्रभाव ऐश्वर्य आदिमें घटा-बढ़ी होती रहेगी।

राजन! मुनि और श्रावकोंके भेदसे दो प्रकारका धर्म बतलाया गया है; इनमें मुनियोंका धर्म मोक्ष प्राप्त कराने वाला है और श्रावकोंके धर्मसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। दोनोंका स्वरूप बतला चुके हैं। अब नरक स्वर्गका हाल बतलाते हैं। जीवको पापकर्मके उदयसे नरकमें जाना पड़ता है। वहां यह जीव नाना तरहके दुःख भोगता है। अधोलोकमें सात नरक हैं। उनके नाम ये हैं— धर्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी, माघवी इनमें चौरासी लाख बिलें क्रमसे हैं। पहली पृथ्वीमें तीस लाख दूसरीमें पच्चीस लाख, तीसरीमें पंद्रह लाख, चौथीमें दश लाख पांचवींमें तीन लाख, छठीमें पांच कम एक लाख और सातवींमें पांच। पहलीमें नारकी जीवोंके जघन्य कापोतीलेश्या दूसरीमें मध्यम कापोतीलेश्या और तीसरी पृथ्वीके ऊपरी भागमें उत्कृष्ट कापोतीलेश्या है और उसी तीसरीके साधे भागमें जघन्य नील लेश्या चौथीके मध्यम नील लेश्या है। पांचवीं पृथ्वीके उर्द्ध भागमें उत्कृष्ट और उसी पांचवींके निम्न

भागमें जघन्य कृष्ण लेश्या है। छठीं पृथ्वीके उद्धवमें नारकी जीवोंकी मध्यम कृष्ण लेश्या और निम्नभागमें परम कृष्ण-लेश्या है और सातवीं पृथ्वीके नारकीयोंकी उत्कृष्ट कृष्ण लेश्या है। इन नारकीयोंकी आयु इस प्रकार होती है—

प्रथम नरकमें एक सागरकी,दूसरेमें तीन सागरकी, तीसरेमें सात सागरकी, चौथेमें दश सागरकी, पांचवेंमें सत्रह सागरकी छठवेंमें वाइस सागरकी और सातवें नरकमें तैंतिस सागरकी उत्कृष्ट आयु है। पहलेमें दश हजार वर्षकी जघन्य आयु, दूसरे में एक सागर, तीसरेमें तीन सागर,चौथेमें सात सागर पांचवेंमें दश सागर छठवेंमें सत्रह सागर और सातवेंमें बाईस सागरकी जघन्य आयु होती है। उनके शरीरकी ऊंचाई सातवें नरकमें पांच सौ धनुषकी होती हैं और क्रमसे अन्य नरकोंमें आधी होती गयी है। प्रथम नरकमें रहने वाले नारकियोंका अवधि-ज्ञान एक योजन तक रहता है, पर क्रमसे आधा घटता जाता है। अव इसके आगे देवोंका वर्णन करते हैं— भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी चार प्रकारके देव होते हैं। भवनवासियोंके दश भेद, व्यन्तरोंके आठभेद, ज्योतिष्कोंके पांच भेद तथा कल्पवासियोंके वारह भेद होते हैं। कल्पातीत देवोंमें किसी प्रकारका भेद नहीं है। असुर कुमार, नागकुमार, सुपर्ण-कुमार, द्वीप कुमार, अग्निकुमार, स्तनित कुमार, उदधि कुमार, दिककुमार विद्युत्कुमार और वातकुमार ये भवनवासियों के भेद है। किन्नर, किं पुरुषमहोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस भूत, पिशाच ये अष्ट व्यतंरोंके भेद कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त

सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह-नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे ज्योतिषियोंके पांच भेद हैं। ये देव मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करते हुए सदा भ्रमण करते रहते हैं। सौधर्म, ऐशान, सानतकुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर लांतव, कापिष्ट, शुक्र महाशुक, सतार सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण अच्युत ये सोलह स्वर्ग हैं। इनके उर्द्ध भागमें नव ग्रैवेयक हैं, नव अनदिश है और उनके ऊपर, विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और स्वार्थसिद्धि नामके पांच पंचोत्तर है। इस प्रकार ऊपरके कहे गये देवोंमें आयु सुख, प्रभाव, कांति और अवधि ज्ञान अधिक है। ग्रैवेयकसे पूर्वके देव अर्थात् सोलहवें स्वर्ग तकके कल्पवासी कहलाते हैं और आगेके कल्पातीत। वैमानिकदेवोंके विमानोंकी संख्या चौरासी लाख सतानवे हजार तेईस है। भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी देवोंकी कृष्ण नील कापोत और जघन्य पीतलेश्या है। उनकी द्रव्यलेश्या और भाव भी यही है। असुर कुमार देवोंकी उत्कृष्ट आयु एक सागर, नागकुमार देवोंकी तीन पल्य, सुपर्ण-कुमारोंकी ढाई पल्य, द्वीपकुमारोंकी दो पल्प और वाकी भवन-वासियोंकी डेढ-डेढ पल्य भी होती है। पर इन्हीं देवोंकी जघन्य आयु दशहजार वर्षकी है। भवनवासी देवोंके शरीरकी उंचाई पच्चीस धनुष,व्यंतरोंकी दश धनुष तथा ज्योतिषियोंकी सत्रह धनुषकी होती है। प्रथम, दूसरे स्वर्गमें देवोंकी उत्कृष्ट आयु दो सागर,तीसरे-चौथेमें सात सागर सातवें-आठवेंमें चौदह सागर नवें-दशवेंमें सोलह सागर ग्यारहवें-वारहवेंमें अठारह सागर तेरहवें-चौदहवेंमें वीस सागर और पन्द्रहवें सोलहवेंमें

बाइस सागरकी होती है। फिर आगे एक सागर आयुकी वृद्धि होती गयी है। प्रथम और दूसरे स्वर्गके देवोंका अवधिज्ञान पहले नरक तक है। तीसरे चौथे स्वर्गके देवोंका दूसरे नरक तक, पांचवें छठें, सातवें आठवें स्वर्गके देवोंका तीसरे नरक तक है। इसी प्रकार नवें दशवें ग्यारहवें वारहवें स्वर्गके देवोंका अवधिज्ञान चौथे नरक तक तथा तेरहवें चौदहवें पंद्रहवें सोलहवें स्वर्गके देवोंका अवधिज्ञान पांचवें नरक तक है। नवग्रैवेयक देवोंका छठें नरक तक और नौ अनुदिशके देवोंका सातवें नरक तक अवधिज्ञान हैं। पर अनुत्तर वैमानिक देवोंका अवधिज्ञान ऊपर विमानके शिखर तक होता है।

पहले दो स्वर्गोंके देव, भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी, मनुष्योंकी भांतिही शरीरसे भोग-भोगते हैं। किन्तु तीसरे और चौथे स्वर्गके देव, देवियोंके स्पर्श मात्रसे ही तृप्त हो जाते हैं। नवेंसे लेकर वारहवें तकके देव केवल देवियोंके शब्दसे तृप्ति लाभ करते हैं और तेरहवेंसे सोलहवेंतकके देव संकल्प मात्रसे तृप्तिका अनुभव करते हैं। इसी प्रकार सोलहवें स्वर्गसे ऊपरके ग्रैवेयक, अनुदिश, अनुत्तर विमानवासी देवोंमें कामकी वासना नहीं होती। वे ब्रह्मचारी होते है। अतः वे सबसे सुखी रहते हैं। देवियोंके उत्पन्न होनेके उपपाद स्थान सौधर्म और ईशान स्वर्गमें हैं। देवियोंके विमानोंकी संख्या पहलेमें छः लाख और दूसरेमें चार लाख अर्थात् दश लाख है। प्रथम स्वर्ग की देवियां दक्षिणमें आरण स्वर्ग तक और ईशान

में उत्पन्न हुई उत्तर दिशाकी ओर अच्युत् स्वर्ग तक जाती हैं। सौधर्म स्वर्गमें निवास करनेवाली देवियोंकी उत्कृष्ट आयु पांच पल्य हैं, पर बारहवें स्वर्ग तक दो दो पल्य बढ़ती गयी है। इसके आगे सात पल्यकी वृद्धि होती गयी है। अर्थात सोलहवे स्वर्गकी देवियोंकी आयु पचपन पल्यकी होती है। इससे आगे देवियां नहीं होतीं। राजन! संसारमें जो इन्द्र चक्रवर्तीके सुख उपलब्ध होते हैं; उसे पुण्यका प्रभाव समझना चाहिए। इसके विपरीत तिर्यंचोंके दुःखोंको पापका फल। पर राजन! पाप और पुण्य दोनों ही दुख दायक और बंधके कारण हैं। जो इन दोनोंसे रहित हो जाता है, वही वस्तुतः मोक्ष प्राप्त करता है। अनेक देवों द्वारा नमस्कार किये जाने वाले गौतम स्वामी इस प्रकार धर्मोपदेश देकर चुप हो गये। इसके पश्चात् महाराज श्रेणिक उन्हें नमस्कार कर अपनी राजधानीको लौट आये।

महामुनि गौतम गणधर स्वामीने अनेक देशोंका विहार करते हुए स्थान-स्थान पर धर्मकी अभिवृद्धि की। वे आयुके अन्तमें ध्यानके द्वारा चौदहवें गुणस्थानमें पहुंचे। उस समय वे कर्मोंका नाश करने लगे। उन्होंने उपान्त्य समयमें ही अपने शुक्लध्यानरूपी खड्गसे बहत्तर प्रकृतियोंको नष्ट किया। इन्द्र द्वारा नमस्कार किये जानेवाले गौतम स्वामीने अन्त समयमें साता वेदनीय, आदेय, पर्याप्त, त्रस बादर, मनुष्यायु, पंचेन्द्रिय जाति, मनुष्य गति, मनुष्य गत्यानुपूर्वी, उच्च गोत्र सुभग यशस्कीर्ति ये बारह प्रकृतियोंको विनष्ट किया। तीर्थंकर प्रकृति तो

उनमें थी ही नहीं। जिन्हें त्रैलोक्यके जीव नमस्कार करते हैं,जो अनन्त चतुष्ठयसे भूषित हैं, उन गौतम स्वामीने समस्त प्रकृतियोंको विनष्ट कर मोक्षरूपी स्त्रीकी प्राप्ति की। मुक्त होनेके वाद वे सिद्ध अवस्थामें जा पहुंचे। उनकी विशुद्ध आत्मा शरीरसे कुछ कम आकारकी, अष्टकर्मोंसे रहित तथा सम्यग्दर्शन आदि अष्ट गुणोंसे सुशोभित है। वे लोक शिखर पर विराजमान चिदानन्द मय और सनातन ज्ञान स्वरूप हैं। सदा वे नित्य और उत्पाद व्यय सहित हैं।

गौतम स्वामीके मोक्ष जानेके पश्चात् इन्द्रादिक देवोंका आगमन हुआ। उन्होंने मायामयी शरीर धारण कर कर्पूर चन्दनादि ईंधनके द्वारा उनके शरीरको भस्म किया, मोक्षकल्याणकका उत्सव सम्पन्न किया और माथे पर भस्मका लेपन किया। इस प्रकार वे वार वार नमस्कार कर अपने २ स्थानको चले गये।

इस ओर गौतम स्वामीके अग्निभूत और वायुभूति दोनों भाई पांचसौ ब्राह्मणोंके साथ तपश्चरण करने लगे। दोनों भ्राताओंने घातिया कर्मोंका नाश कर अनेक भव्यजीवोंको धर्मोपदेश दिया और अन्तमें समस्त कर्मोंको विनष्ट कर मोक्ष प्राप्त किया। उन पाँचसौ ब्राह्मणोंमें से अनेक सर्वार्थसिद्धिमें और अनेक स्वर्गमें उत्पन्न हुए। सत्य है, तपश्चरणके द्वारा सब कुछ संभव है।

गौतम गणधर स्वामीके गुणोंका वर्णन करना जब बृहस्पतिके लिए भी संभव नहीं तब भला मैं अल्पज्ञानी उनके

गुणोंका वर्णन कैसे कर सकता हूं। जिनके धर्मोपदेशको श्रवण कर अनेक भव्यजीव मोक्षगामी हुए और आगे भी होते रहेंगे, उन्हें मैं वारवार नमस्कार करता हूं। गौतम स्वामीकी स्तुति कर्मोंको नष्ट करने तथा अनन्त सुख प्रदान करनेवाली है। वह मोक्ष प्राप्तिमें सहायक हो।

गौतम स्वामीका जीव प्रथम विशालाक्षी नाम्नी रानीके पर्यायमें था, पुनः नरकगामी हुआ। वहांसे निकल कर विलाव, शूकर, कुत्ता, मुर्गा और पुनः शूद्र कन्याके रूपमें हुआ। उसने व्रतके प्रभावसे ग्रह स्वर्गमें देवत्वकी प्राप्ति की। वहांसे आकर ब्राह्मणका पुत्र गौतम हुआ और उसके पांचसौ शिष्य हुए। सत्य है, धर्मके प्रभावसे क्या नहीं होता है। भगवान महावीर स्वामीके समोशरणमें मानस्तंभको देख कर गौतमका सारा अभिमान चूर होगया। उसने भगवानके समीप जिन-दीक्षा ग्रहण कर ली। अन्तमें वे समस्त परिग्रहोंको त्याग कर महावीर स्वामीके प्रथम गणधर हुए। उन्होंने संताप नाशक भव्यजीवोंको सुख प्रदान करने वाली धर्मकी वृष्टिकी अर्थात् धर्मोपदेश दिया। जिन्हें इन्द्र, नरेन्द्र नमस्कार करते हैं, उन्हें मैं हृदयसे नमस्कार करता हूं। जिन्होंने कर्मरूपी शत्रुओंको विनष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त किया। अपनी दिव्य वाणीके द्वारा जिन्होंने राजाओं और मनुष्योंको धर्मोपदेश दिया, जो चैतन्य अवस्था धारण कर मोक्षगामी हुए, वे श्रीगौतम स्वामी जीवोंके अनूकुल स्थायी मोक्ष-सुख प्रदान करें। जिनेन्द्रदेवकी वाणीसे प्रकट

हुआ जैनधर्म, सर्वोत्तम पद प्रदान करनेवाला है, रूप, तेज, बुद्धि देनेवाला है तथा सर्वोत्तम विभूतियां—भोगोपभोगकी सामग्रियाँ तथा स्वर्ग मोक्षादिकी प्राप्ति करनेवाला है, अतएव भव्य जीवोंको चाहिए कि वे जैनधर्मको धारण करें।

समस्त पापोंको नाश करनेवाले श्री नेमिचन्द्र मेरे इस गच्छ के स्वामी हुए। ये यशकीर्ति अत्यन्त ख्यातनामा हुए। अनेक भव्यजन और राजा उनकी सेवा करते थे। उनके पट्ट पर श्री भानुकीर्ति विराजित हुए। वे सिद्धान्त शास्त्रके पारंगत, कामविजयी प्रबल प्रतापी और शांत थे। उन्होंने क्रोध मान माया लोभ आदि कषायोंपर विजय प्राप्तकी थी। उनके पट्टपर,न्यायाध्यात्म, पुराण, कोष छन्द अलंकार आदि अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता श्रीभूषण मुनिराज विराजमान हुए। वे आचार्योंके सम्प्रदायमें प्रधान थे। उनके पट्टपर श्रीधर्मचन्द्र मुनिराज विराजे। वे भारती गच्छके देदीप्यमान सूर्य थे। महाराज रघुनाथके राज्यमें महाराष्ट्र नामका एक छोटासा नगर है। वहां ऋषभ देवका एक जिनालय है, जो पूजा पाठ आदि महोत्सवसे सदा सुशोभित रहता हैं। धर्मात्मा मनुष्य योगिराज सदा उसकी सेवामें लीन रहते हैं। उसी जिनालयमें बैठ कर विक्रम सम्वत १७२६ की ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीयाके दिन—शुक्रके शुभ स्थानमें रहते हुए, अनेक आचार्योंके अधिपति श्रीधर्मचन्द्र मुनिराजने भक्तिके वश हो गौतम स्वामीके शुभ चरित्रकी रचना की। हमारी यही भावना है कि इस चरित्रके द्वारा भव्यप्राणियोंका सदा कल्याण होता रहे। ॥ समाप्त ॥

धन्यकुमार चरित्र

इस ग्रंथको नवीन टाइपमें पुस्तकाकार अभी छपाया गया है। कविता बहुत ही भावपूर्ण तथा चरित्र आदर्श है। पढ़कर प्रत्येक प्राणी शिक्षा ग्रहण कर सकता है। न्यो० ।||)

उपयोगी शिक्षायें

इस छोटेसे ट्रैक्टमें चुनी हुई १०५ शिक्षाओंका संग्रह किया गया है। बालकोंको बांटनेके लिये अपूर्व चीज है न्यो० ~)॥ मात्र

अंधेरनगरी [नाटक]

इस ३२ पृष्ठके नाटकको पढ़कर आप हंसते २ लोट-पोट हो जांयगे। थोड़े समयके खेलनेके लिये बहुतही बढ़िया है। न्यो० ।)

यूरुपमें जंगकी तैयारी

तमाम यूरुपमें युद्धके बादल मंडरा रहे हैं एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रको हड़पनेके लिये चालें चल रहा है। इस पुस्तकमें तमाम यूरोपकी बड़ी २ शक्तियोंका पूरा २ पता बताया है कि किस तरहके हथियार किस २ के पास कितने २ हैं, तथा निकट भविष्यमें ही युद्ध होना संभवित है। इससे बचनेके क्या उपाय हैं। आदि बातोंपर अंग्रेजी लेखकने खूबही प्रकाश डाला है, तमाम राष्ट्रीय पत्रोंने इस पुस्तककी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है। न्यो० १।) मात्र आजही मंगाइये।

पार्श्वनाथ पुराण

शास्त्राकार पुष्ट कागज बड़ा टाइप और सुन्दर छपाईके साथ ही जिल्द भी बंधा दी है। स्व० भूधरदासजीने इस महत्वपूर्ण ग्रन्थको रचकर जैन सिद्धान्तके रहस्यको खूब ही स्पष्ट कर दिया है। प्रत्येक धर्मप्रेमी सज्जनको इसकी १ प्रति अवश्य ही मंगाकर देखनी [illegible] पत्र १||) सजिल्द २)।

प्रद्युम्न चरित्र

नवीन शास्त्राकार आज कलकी सरल भाषामें सम्पादन कराके सुन्दर वार्डर सहित कई चित्रोंसे विभूषित करके छपाया गया है। टाइप सच्चा जिनवाणी संग्रहकी तरह वड़ा और पुष्ट कागज लगाकर ग्रन्थको उत्तम वनानेमें कुछ भी कसर नहीं रखी गयी है। चित्र भी दिये हैं इतनी सब कुछ विशेषतायें रहते हुए भी न्यो० ३) मात्र। सचित्र और सजिल्दका ४) रखा है।

जैन गायन सुधा

नई तर्जके वायस्कोपके गानोंको सुन २ कर छोटे-छोटे वालक उन्हीं अश्लील और भद्दे सारहीन गानोंको अलापा करते थे, उनको सुनकर जैन समाजके वड़े-वड़े कवियोंने उसी तर्जों पर अपनी लेखनी उठाकर वास्तवमें एक वड़ी भारी आवश्यकताकी पूर्ति कर दी है। चुने हुए करीव १३६ गायनोंका संग्रह हमने एकत्रित कराके इस जैन गायन सुधाको सचित्र छापकर आपके समक्ष रखा है। मूल्य ॥)

गौतम चरित्र

नवीन सरल हिन्दीमें छपकर तैयार हुआ है, पृष्ठ संख्या ११२ न्योछावर ॥।)

पांडव पुराण

शास्त्र साइजमें विलकुल नवीन छपकर तैयार हुआ है पृष्ठ संख्या करीव ३५० न्यो० पांच रुपया मात्र।

जैन महिला भूषण

यह स्त्रियोंके लिये वड़े कामकी चीज है प्रत्येक जैन महिला को इसका अध्ययन जरूर ही करना चाहिये। न्यो० १) मात्र।

आराधना कथा कोष

तीनों भाग छपकर तैयार हो गये हैं। पृष्ठसंख्या ६००के लग भग, सजिल्द ग्रन्थका दाम ४) रखा गया है। १४४ कथायें इस ग्रन्थमें लिखो गई हैं। प्रत्येक कथाको इतनी सरलभाषामें लिखा गया है कि १० वर्षके बालकसे लेकर स्त्रियें तथा पुरुष उपन्यास की तरह आद्योपान्त पढ़े वगैर पुस्तकको छोड़ नहीं सकते।

नवीन तीर्थ यात्रा

यात्राका समय आ गया, सारे भारतवर्षके क्षेत्रोंका समझमें आने लायक यही संग्रह है जो एक अनुभवी विद्वान द्वारा सम्पादन कराके ८ उत्तम दर्शनोय चित्रोंसे विभूषित किया है जहां जहां रैल, मोटर कच्चा रास्ता है वह हमारी इस ९० पृष्ठकी पुस्तकसे आसानीसे समझमें आजायगा, परदेशमें एक मित्रकी तरह आपको पथदर्शक होगी। न्यो० ॥।) मात्र।

चौबीसी पुराण

अभीतक अलग २ तीर्थंकरोंके अलग-अलग नामोंसे पुराण निकाले गये थे, मुझे कई कई ग्राहकोंने उक्त पुराणकी आवश्यकता दर्शाई तब मैंने पं० पन्नालालजी साहित्याचार्यसे उक्त ग्रन्थका सम्पादन कराके ग्रन्थ प्रकाशन किया है। ग्रन्थ शास्त्राकार साइजमें चारों तरफ वार्डर देकर वहुत ही सुन्दर छपाया गया है। मुख पृष्ठ पर जन्म कल्याणकका तिरंगा चित्र भी दिया गया है। जो दर्शनीय है।

एक बार प्रत्येक भाई व वहिनोंको इसका स्वाध्याय अवश्य ही करना चाहिये। न्यो० ३) सजिल्दका ४)।

कर्मपथ

यह राजनैतिक तथा सामाजिक उपन्यास है। प्रथमवार छप कर हांथों हांथ विक गया था, इससे इसकी उत्तमताके विषयमें कुछ लिखना निरर्थक हैं, वंगला भाषाका अनुवाद है। मू० २)

वीरपूजा

यह नाटक तीसरी वार छप कर तैयार हुआ है, स्टेजपर खेलनेके लिये अत्यन्त सुन्दर है। अनुवादक पं० रूपनारायणजी पाण्डेय विशुद्ध और सरल भाषा लिखनेमें सुप्रसिद्ध हैं। मू० १॥)

महाराज श्रेणिक

यही महाराज श्रेणिक भविष्यमें होने वाले तीर्थंकर होंगे, उनका पवित्र और पुन्योदय करनेवाला महत्वपूर्ण जीवन चरित्र कौन पढ़ना नहीं चाहेगा वही छप कर तैयार हो गया, इसकी सरल भाषा और छपाई सफाई देखकर आपका मन प्रसन्न हो जायगा, पृष्ठ संख्या ३५० होनेपर भी करीब १ दर्जन भाव पूर्ण चित्र अच्छे कलाकारोंसे वनवाकर सुन्दर छापकर ग्रन्थको सर्व प्रिय बनानेमें प्रकाशकने कुछ भी कसर नहीं रखी है। तिस पर भी मूल्य सादे ग्रन्थका १॥) वोर्डवाइडिङ्ग २) और रेशमी जिल्दका २॥) रखा है।

जापान वृटेनकी छातीपर

इस राजनैतिक पुस्तकको पढ़कर आपको जापानकी पूरी ताकतका पता सहजमें लग सक्ता है। सरल हिन्दीमें लिखी गई है। अभी तक अंग्रेजी वाले ही इसका आनन्द लेते थे, हमने हिन्दीमें लिखाकर यह पुस्तक नवीनही प्रकाशित की है। अगर आप व्यापारी हैं तो जरूर ही पढे। न्यो० १)

गौतम स्वामी अपनी मंडली सहित समोशरण में
शास्त्रार्थ को जा रहे हैं—पृष्ठ ६४